जैन विद्या

भाग-२

(जैन विद्या प्रवेशिका परीक्षा, द्वितीय वर्ष
के लिए स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक)

सम्पादक

मुनि सुमेरमल 'सुदर्शन'

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं : (01581) 226080, 224671
books@jvbharati.org

Books are available online at
https://books.jvbharati.org

©जैन विश्व भारती, लाडनूं
अट्ठाईसवां संस्करण : सितम्बर ( )
मूल्य : चालीस रुपये मात्र
मुद्रक :

JAIN VIDYA BHAG - 2 by Muni Sumernal Sundrshan **रु 40/**

प्रकाशकीय

बाल्यावस्था जीवन की स्वर्णिम बेला है। इस अवस्था में जो संस्कार पड़ जाते हैं, भावी जीवन पर उसका अमिट प्रभाव रहता है। संस्कारों का मुख्य कारण संगति एवं पाठ्य-सामग्री है। यदि सत्-संगति व सत्-पाठ्यक्रम सामग्री का संयोग रहे तो बालक में जो संस्कारों के अंकुर उगेंगे, वे निर्मल और सात्त्विक होंगे। यदि इस ओर विपरीतता रही तो उसका जीवन सुसंस्कृत नहीं रहेगा। आज के विद्यार्थियों का उदाहरण हमारे सामने है। आध्यात्मिक एवं नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण विनय, शालीनता एवं अनुशासन जैसी सद्वृत्तियां उनमें दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। अतएव सबसे अधिक आवश्यक है, बालकों की सुकुमार बुद्धि में इन सद्गुणों को भरने का प्रयास किया जाय। क्योंकि जैसा उनका जीवन होगा, समाज और राष्ट्र का स्वरूप उससे भिन्न नहीं हो सकेगा। यह हर्ष का विषय है कि आज समूचे राष्ट्र का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है।

तत्त्व-ज्ञान में रूचि रखने वालों से यह छिपा नहीं है, जैन-दर्शन और साहित्य भारत की संयम प्रधान संस्कृति का अन्यतम अंग है। भारतीय वाङ्मय में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी शिक्षाएं जहां एक ओर उच्चतम त्याग और तपस्या के पथ का निर्देशन कराती है। वहां नागरिक जीवन के सन्निर्माण में भी उनका बहुत बड़ा उपयोग है। उसके तत्त्व व्यापक, असंकीर्ण और सार्वदेशिक है, जो जन-जन को जीवन-विज्ञान का सही बोध कराते हैं। जिन्हें आज लोक-भाषा और

जन साहित्य में रखने की महती आवश्यकता है। गुरुदेव श्री तुलसी के निर्देशन में इसी उद्देश्य को लेकर जैन विश्व भारती, समण संस्कृति संकाय ने जैन विद्या पाठ्य पुस्तकों का निर्माण कराया है।

प्रस्तुत पुस्तक जैन विद्या प्रवेशिका द्वितीय वर्ष के लिए निर्धारित पाठ्य पुस्तक है, पुस्तक के संकलन व संपादन में मुनि सुमेरमलजी 'सुदर्शन' की महती भूमिका रही है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

जैन विद्या के अध्ययन में बालक-बालिकाओं की रूचि निरन्तर वृद्धिंगत हो, यह मंगल कामना ।

निर्देशक
समण संस्कृति संकाय
जैन विश्व भारती

अनुक्रम

कंठस्थ

१. अर्हत वन्दना	आचार्य श्री तुलसी	१
२. पंचपद वंदना		६
३. पच्चीस बोल		८
४. अणुव्रत-गीत	आचार्य श्री तुलसी	२१
५. अमर रहेगा धर्म हमारा		२२

इतिहास

६. प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव	मुनि दुलहराज	२५
७. २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ	धर्मबोध भाग दो से	२८
८. आचार्य श्री भारमलजी (१)	धर्मबोध भाग दो से	३१
९. आचार्य श्री भारमलजी (२)	धर्मबोध भाग दो से	३५
१०.आचार्य श्री रायचंदजी	मुनि बुद्धमल्ल	३८
११.आचार्यश्री जीतमलजी	आचार्य श्री तुलसी	४५

सामान्य-ज्ञान

१२.जैन पर्व	आचार्य श्री तुलसी	५१
१३.नौ तत्त्व	मुनि सुदर्शन	५५

१४.नौ तत्त्व : एक विश्लेषण	'तेरहद्वार' से अनूदित	५७
१५.छः द्रव्य	मुनि दुलहराज	६०
१६.द्रव्य कहां है ?	धर्म बोध भाग दो से	६२
१७.रूपी-अरूपी	धर्म बोध भाग दो से	६४
१८.धर्म की पहचान	धर्म बोध भाग दो से	६७
१९.धर्म-स्थान	धर्म बोध भाग दो से	७०
२०.आशातना	धर्म बोध भाग दो से	७२
२१.तेरापंथ की मर्यादायें	धर्म बोध भाग दो से	७४
२२.क्षमा-याचना	धर्म बोध भाग दो से	७७
कथा बोध		
२३.मृत्युंजयी थावच्चापुत्र	आचार्य श्री तुलसी	८०
२४.अर्हन्नक की आस्था	आचार्य श्री तुलसी	८३
२५.मधुर वाणी	मुनि सुखलाल	८५
२६.सरलता का परिणाम	मुनि सुखलाल	८९
२७.धन अनर्थ का मूल है	धर्म बोध भाग दो से	९२

१

अर्हत्-वंदना

वंदना सूत्र

१.	**णमो अरहंताणं**	अरहन्तों को मेरा नमस्कार हो
	णमो सिद्धाणं	सिद्धों को मेरा नमस्कार हो
	णमो आयरियाणं	धर्माचार्यों को मेरा नमस्कार हो
	णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो
	णमो लोए सव्वसाहूणं	लोक के सब साधुओं को मेरा नमस्कार हो
	एसो पंच णमुक्कारो	यह पंच नमस्कार महामंत्र
	सव्व पावपणासणो	सब पापों का विनाशक है,
	मंगलाणं च सव्वे सिं	और सब मंगलों में
	पढमं हवइ मंगलं	पहला मंगल है।
२.	**जे य बुद्धा अइक्कंता**	जितने भी बुद्ध (तीर्थंकर) हुए हैं,
	जे य बुद्धा अणागया	और जितने भी होंगे, उन सबका
	संती तेसिं पइट्ठाणं	प्रतिष्ठान (आधार) शान्ति है,
	भूयाणं जगई जहा	जैसे प्राणियों का आधार है - पृथ्वी।

मोक्ष-सूत्र

३. **से सुयं च मे, अज्झत्थियं च मे**	मैंने सुना है, अनुभव किया है-
बंध-पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव	बंध और मोक्ष तेरे अन्तःकरण में ही है
४. **पुरिसा! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्त मिच्छसि।**	पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है, फिर बाहर मित्र को क्यों खोजता है ?
५. **पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि**	पुरुष ! अपने आपका निग्रह कर, स्वयं दुःख से मुक्त हो जाएगा।

अहिंसा सूत्र

६. **पुरिसा ! तुमंसि नाम सच्चेव,**	पुरुष ! वह तू ही है,
जं 'हंतव्वं' ति मन्नसि।	जिसका तू हनन करना चाहता है।
७. **सव्वे पाणा ण हंतव्वा।**	किसी प्राणी का हनन मत करो -
एस धम्मे धुवे, णिइए सासए	यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।

सत्य-सूत्र

८. **पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि**	पुरुष ! तू सत्य को पहचान।
९. **सच्चं भयवं**	सत्य ही भगवान है।
१०. **सच्चं लोयम्मि सारभूयं**	सत्य लोक में सारभूत है।
११. **इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं**	यही निर्ग्रन्थ प्रवचन (अर्हत-प्रवचन) सत्य है।

अप्रमाद-सूत्र

१२.उट्ठिए णो पमायए	जब जाग उठे हो, फिर प्रमाद मत करो।
१३.सव्वतो पमत्तस्स भयं	प्रमत्त व्यक्ति को सब ओर से भय होता है।
सव्वतो अपमत्तस्स णत्थि भयं	अप्रमत्त को कहीं भी भय नहीं होता।

साम्य-सूत्र

१४.समया धम्म मुदाहरे मुणी।	भगवान ने समता में धर्म कहा है।
१५.लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा समो निंदा पसंसासु, तहा माणावमाणओ	हम लाभ-अलाभ, सुख-दुख जीवन-मरण, निंदा-प्रशंसा मान-अपमान में सम रहें
१६.अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ वासी चंदणकप्पो य, असणे अणसणे तहा	हम लौकिक सुखों में अप्रतिबद्ध हों, पारलौकिक सुखों में अप्रतिबद्ध हों वसूले से काटने या चंदन लगाने पर, तथा आहार मिलने या न मिलने पर सम रहें।

आत्म-विजय-सूत्र

१७.अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य। अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ॥	आत्मा ही सुख-दुख की करने वाली और उनका क्षय करनेवाली है। सत्प्रवृत्ति में लगी हुई आत्मा मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में लगी आत्मा शत्रु है।

१८. **अप्पा णई वेयरणी,**	आत्मा ही वैतरणी नदी है,
अप्पा मे कूड़सामली ।	आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है।
अप्पा कामदुहा धेणु,	आत्मा ही कामधेनु है और
अप्पा मे नंदणं वणं ॥	आत्मा ही नन्दनवन है।
१९. **जो सहस्सं सहस्साणं**	दुर्जेय संग्राम में दस लाख
संगामे दुज्जए जिणे ।	योद्धाओं को जीतने वाले की अपेक्षा
एगं जिणेज्ज अप्पाणं	जो अपने आपको जीत लेता है
एस से परमो जओ ॥	वह परम विजयी होता है।

मैत्री-सूत्र

२०. **खामेमि सव्वजीवे,**	मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ
सव्वे जीवा खमंतु मे।	वे मुझे क्षमा करें।
मित्ती मे सव्वभूएसु,	मेरी सबसे मैत्री हो,
वेरं मज्झ न केणई॥	किसी से भी मेरा वैर न रहे।

मंगल-सूत्र

२१. **अरहंता मंगलं**	अरहंत मंगल हैं,
सिद्धा मंगलं,	सिद्ध मंगल हैं,
साहू मंगलं,	साधु मंगल हैं,
केवलि-पण्णत्तो	केवलि-भाषित धर्म मंगल है।
धम्मो मंगलं।	
अरहंता लोगुत्तमा,	अरहंत लोक में उत्तम हैं,
सिद्धा लोगुत्तमा,	सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साहू लोगुत्तमा,	साधु लोक में उत्तम हैं,
केवलि पण्णत्तो	केवलि-भाषित धर्म लोक में उत्तम
धम्मो लोगुत्तमो।	है।
अरहंते शरणं पवज्जामि	मैं अरहंतों की शरण में जाता हूं।
सिद्धे शरणं पवज्जामि,	मैं सिद्धों की शरण में जाता हूं,

साहू सरणं पवज्जामि,	मैं साधुओं की शरण में जाता हूं,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं	मैं केवलि-भाषित धर्म की शरण में
शरणं पवज्जामि।	में जाता हूँ।

वन्दना

भाव-भीनी वन्दना भगवान-चरणों में चढ़ायें।
शुद्ध ज्योतिर्मय निरामय रूप अपने आप पाएं॥
ज्ञान से निज को निहारें, दृष्टि से निज को निखारें।
आचरण की उर्वरा में, लक्ष्य-तरुवर लहलहाएं॥१॥
सत्य में आस्था अचल हो, चित्त संशय से न चल हो।
सिद्ध कर आत्मानुशासन, विजय का संगान गाएं॥२॥
बिन्दु भी हम सिन्धु भी हैं, भक्त भी भगवान भी हैं।
छिन्न कर सब ग्रंथियों को, सुप्त-चेतन को जगाएं॥३॥
धर्म है समता हमारा, कर्म समतामय हमारा।
साम्ययोगी बन हृदय में, स्रोत समता का बहाएं॥४॥

प्रश्न

१. **अर्हत्-वंदना का कोई एक सूत्र लिखो।**
२. **'खामेमि सव्व जीवे' इस पद्य को पूरा लिखो।**
३. **'सच्चं लोयम्मि सारभूयं-यह पद्य किस सूत्र का है ?**
४. **अर्हत्-वन्दना का मंगल सूत्र लिखो।**
५. **'भाव-भीनी वन्दना' के कोई दो पद्य लिखो।**

२
पंचपद वन्दना

१. **णमो अरहंताणं**

.......परम अर्हता-सम्पन्न, चार घनघाती कर्म का क्षय कर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त शक्ति और आठ प्रातिहार्य इन बारह गुणों से सुशोभित, चौतीस अतिशय, पैंतीस वचनातिशय से युक्त धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर आदि अर्हतों को विनम्र भाव से पंचांग प्रणति-पूर्वक भावभीनी वन्दना-तिक्खुत्तो आयाहिणं.......।

२. **णमो सिद्धाणं**

.... परम सिद्धि-संप्राप्त, अष्ट कर्म क्षय कर केवल-ज्ञान, केवल दर्शन, असंवेदन, आत्म-रमण, अटल-अवगाहन, अमूर्ति, अगुरुलघु और निरन्तराय इन आठ गुणों से सम्पन्न परमात्मा परमेश्वर जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, दुःख दारिद्रय-रहित अनन्त सिद्धों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणति-पूर्वक भावभीनी वन्दना-तिक्खुत्तो आयाहिणं...... ।

३. **णमो आयारियाणं**

.... परम आचार-कुशल, धर्मोपदेशक, धर्म-धुरंधर, बहुश्रुत, मेधावी, सत्य-निष्ठ, श्रद्धा-धृति-शक्ति-शांति-

सम्पन्न,अष्टगणि-सम्पदा से सुशोभित, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के ज्ञाता, चतुर्विध धर्मसंघ के शास्ता, तीर्थंकर के प्रतिनिधि एवं छत्तीस गुणों के धारक तथा वर्तमान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आदि धमाचार्यों को विनम्र भाव से पंचांग प्रणति-पूर्वक भावभीनी वन्दना-तिक्खुत्तो आयाहिणं .... ।

४. **णमो उवज्झायाणं**

.... परम श्रुत-स्वाध्यायी, धर्म-संघ में आचार्य द्वारा नियुक्त, ग्यारह अंग तथा बारह उपांग के धारक, अध्ययन और अध्यापन में कुशल इन पच्चीस गुणों से सुशोभित उपाध्यायों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणति-पूर्वक भावभीनी वन्दना-तिक्खुत्तो आयाहिणं .... ।

५. **णमो लोए सव्व साहूणं**

.... अध्यात्म-साधना में संलग्न, पांच महाव्रत, पंचेन्द्रिय-निग्रह, चार कषाय-विवेक, भावसत्य, करण-सत्य, योगसत्य, क्षमा, वैराग्य, मन-वचन-काय-समाहरणता, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सम्पन्नता, वेदना और मृत्यु के प्रति सहिष्णुता इन सत्ताईस गुणों से सुशोभित, परीषह-जयी, प्रासुक-एषणीय-भोजी, अर्हत् और आचार्य की आज्ञा के आराधक, तपोधन साधु-साध्वियों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणति-पूर्वक भावभीनी वन्दना-तिक्खुत्तो आयाहिणं.......।

प्रश्न

१. **पच्चीस गुणों से सुशोभित कौन होता है ?**
२. **साधु-साध्वियों में कितने गुण पाये जाते हैं ?**
३. **परम अर्हता-सम्पन्न को पूरा लिखें।**
४. **आचार्यों के गुणों का उल्लेख करें।**

३

पच्चीस बोल

(११-२५)

११. ग्यारहवां बोल-गुणस्थान चौदह

१. मिथ्यादृष्टि-गुणस्थान
२. सास्वादन-सम्यग्दृष्टि-गुणस्थान
३. मिश्र-गुणस्थान
४. अविरति-सम्यग्दृष्टि-गुणस्थान
५. देशविरति-गुणस्थान
६. प्रमत्तसंयत-गुणस्थान
७. अप्रमत्तसंयत-गुणस्थान
८. निवृत्तिबादर-गुणस्थान
९. अनिवृत्तिबादर-गुणस्थान
१०. सूक्ष्म-सम्पराय-गुणस्थान
११. उपशांत-मोह-गुणस्थान
१२. क्षीणमोह-गुणस्थान
१३. सयोगी-केवली-गुणस्थान
१४. अयोगी-केवली-गुणस्थान

१२. बारहवां बोल-पांच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है शब्द। वह तीन प्रकार का होता है।

१. जीव शब्द २. अजीव शब्द ३. मिश्र शब्द ।

चक्षुरिन्द्रिय का विषय है वर्ण। वह पांच प्रकार का होता है।

१. कृष्ण वर्ण २. नील वर्ण ३. रक्त वर्ण
४. पीत वर्ण ५. श्वेत वर्ण।

घ्राणेन्द्रिय का विषय है–गंध। वह दो प्रकार का होता है।

१. सुगंध २. दुर्गंध ।

रसनेन्द्रिय का विषय है रस। वह पांच प्रकार का होता है।

१. तिक्त रस
२. कटु रस
३. कषाय रस
४. आम्ल रस
५. मधुर रस ।

स्पर्शनेन्द्रिय का विषय है स्पर्श। वह आठ प्रकार का होता है।

१. शीत स्पर्श
२. उष्ण स्पर्श
३. रुक्ष स्पर्श
४. स्निग्ध स्पर्श
५. लघु स्पर्श
६. गुरु स्पर्श
७. मृदु स्पर्श
८. कर्कश स्पर्श ।

१३. तेरहवां बोल : दस प्रकार के मिथ्यात्व

१. धर्म को अधर्म समझना
२. अधर्म को धर्म समझना
३. मार्ग को कुमार्ग समझना
४. कुमार्ग को मार्ग समझना
५. जीव को अजीव समझना
६. अजीव को जीव समझना
७. साधु को असाधु समझना
८. असाधु को साधु समझना
९. मुक्त को अमुक्त समझना
१०. अमुक्त को मुक्त समझना

१४. चौदहवां बोल-नव तत्त्व के ११५ भेद

१. जीव तत्त्व के चौदह भेद -

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद	१. अपर्याप्त	२. पर्याप्त
बादर एकेन्द्रिय के दो भेद	३. अपर्याप्त	४. पर्याप्त
द्वीन्द्रिय के दो भेद	५. अपर्याप्त	६. पर्याप्त

त्रीन्द्रिय के दो भेद	७. अपर्याप्त	८. पर्याप्त
चतुरिन्द्रिय के दो भेद	९. अपर्याप्त	१०. पर्याप्त
असंज्ञी-पंचेन्द्रिय के दो भेद	११. अपर्याप्त	१२. पर्याप्त
संज्ञी-पंचेन्द्रिय के दो भेद	१३. अपर्याप्त	१४. पर्याप्त

२. अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद -

१. स्कंध २. देश ३. प्रदेश ।

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद -

४. स्कंध ५. देश ६. प्रदेश ।

आकाशस्तिकाय के तीन भेद -

७. स्कंध ८. देश ९. प्रदेश ।

काल का एक भेद १० काल ।

पुद्गलास्तिकाय के चार भेद -

११. स्कंध
१३. प्रदेश
१२. देश
१४. परमाणु ।

३. पुण्य तत्त्व के नौ भेद -

१. अन्न-पुण्य
२. पान-पुण्य
३. लयन (स्थान)-पुण्य
४. शय्या-पुण्य
५. वस्त्र-पुण्य
६. मन-पुण्य
७. वचन-पुण्य
८. काय-पुण्य
९. नमस्कार-पुण्य ।

४. पाप तत्त्व के अठारह भेद -

१. प्राणातिपात पाप	१०. राग पाप
२. मृषावाद पाप	११. द्वेष पाप
३. अदत्तादान पाप	१२. कलह पाप
४. मैथुन पाप	१३. अभ्याख्यान पाप
५. परिग्रह पाप	१४. पैशुन्य पाप
६. क्रोध पाप	१५. परपरिवाद पाप
७. मान पाप	१६. रति-अरति पाप
८. माया पाप	१७. माया-मृषा पाप
९. लोभ पाप	१८. मिथ्यादर्शनशल्य पाप।

५. आस्रव तत्त्व के बीस भेद -

१. मिथ्यात्व आस्रव	११. श्रोत्रेन्द्रिय-प्रवृत्ति आस्रव
२. अव्रत आस्रव	१२. चक्षुरिन्द्रिय-प्रवृत्ति आस्रव
३. प्रमाद आस्रव	१३. घ्राणेन्द्रिय-प्रवृत्ति आस्रव
४. कषाय आस्रव	१४. रसनेन्द्रिय-प्रवृत्ति आस्रव
५. योग आस्रव	१५. स्पर्शनेन्द्रिय-प्रवृत्ति आस्रव
६. प्राणातिपात आस्रव	१६. मन-प्रवृत्ति आस्रव
७. मृषावाद आस्रव	१७. वचन-प्रवृत्ति आस्रव
८. अदत्तादान आस्रव	१८. काय-प्रवृत्ति आस्रव
९. मैथुन आस्रव	१९. भण्डोपकरण रखने में अयत्ना करना आस्रव
१०. परिग्रह आस्रव	२०. शुचि-कुशाग्रमात्र दोष-सेवन आस्रव

६. संवर तत्त्व के बीस भेद

१. सम्यकत्व संवर	१२. चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह संवर
२. व्रत संवर	१३. घ्राणेन्द्रिय-निग्रह संवर
३. अप्रमाद संवर	१४. रसनेन्द्रिय-निग्रह संवर
४. अकषाय संवर	१५.स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह संवर
५. अयोग संवर	१६. मनो-निग्रह संवर
६. प्राणातिपात-विरमण संवर	१७. वचन-निग्रह संवर
७. मृषावाद-विरमण संवर	१८. काय-निग्रह संवर
८. अदत्तादान-विरमण संवर	१९. भण्डोपकरण रखने में अयत्ना न करना संवर
९. अब्रह्मचर्य-विरमण संवर	
१०.परिग्रह-विरमण संवर	२०. शुचि-कुशाग्रमात्र दोष-सेवन न करना संवर ।
११.श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह संवर	

७. निर्जरा तत्त्व के बारह भेद -

१. अनशन	७. प्रायश्चित्त
२. ऊनोदरी	८. विनय
३. भिक्षाचरी	९. वैयावृत्य
४. रसपरित्याग	१०. स्वाध्याय
५. काय-क्लेश	११. ध्यान
६. प्रतिसंलीनता	१२. कायोत्सर्ग ।

८. बंध तत्त्व के चार भेद -

१. प्रकृति-बन्ध	३. अनुभाग-बन्ध
२. स्थिति-बन्ध	४. प्रदेश-बन्ध ।

९. मोक्ष तत्त्व के चार भेद -

१. ज्ञान	३. चारित्र
२. दर्शन	४. तप ।

१५. पन्द्रहवां बोल - आत्मा आठ

१. द्रव्य आत्मा	५. ज्ञान आत्मा
२. कषाय आत्मा	६. दर्शन आत्मा
३. योग आत्मा	७. चारित्र आत्मा
४. उपयोग आत्मा	८. वीर्य आत्मा

१६. सोलहवां बोल - दण्डक[1] चौबीस

सात नारकी का दण्डक एक	पहला
भवनपति देवों के दण्डक दस -	
असुरकुमार का दण्डक	दूसरा
नागकुमार का दण्डक	तीसरा
सुपर्णकुमार का दण्डक	चौथा
विद्युतकुमार का दण्डक	पांचवां
अग्निकुमार का दण्डक	छठा
द्वीपकुमार का दण्डक	सातवां
उदधिकुमार का दण्डक	आठवां
दिक्कुमार का दण्डक	नौवां
वायुकुमार का दण्डक	दसवां
स्तनितकुमार का दण्डक	ग्यारहवां
पांच स्थावर जीवों के दण्डक पांच -	
पृथ्वीकाय का दण्डक	बारहवां
अप्काय का दण्डक	तेरहवां
तेजस्काय का दण्डक	चौदहवां
वायुकाय का दण्डक	पन्द्रहवां
वनस्पतिकाय का दण्डक	सोलहवां

त्रस जीवों के दण्डक उन्नीस -

द्वीन्द्रिय का दण्डक	सतरहवां
त्रीन्द्रिय का दण्डक	अठारहवां
चतुरिन्द्रिय का दण्डक	उन्नीसवां
तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय का दण्डक	बीसवां
मनुष्य-पंचेन्द्रिय का दण्डक	इक्कीसवां
व्यन्तर-देवों का दण्डक	बाईसवां
ज्योतिष-देवों का दण्डक	तेईसवां
वैमानिक-देवों का दण्डक	चौबीसवां

१७. **सतरहवां बोल** - लेश्या छह

१. कृष्ण लेश्या	४. तेजो लेश्या
२. नील लेश्या	५. पद्म लेश्या
३. कापोत लेश्या	६. शुक्ल लेश्या।

१८. **अठारहवां बोल** - दृष्टि तीन

१. सम्यग्-दृष्टि	३. सम्यग्-मिथ्या दृष्टि।
२. मिथ्या-दृष्टि	

१९. **उन्नीसवां बोल** - ध्यान चार

१. आर्त्तध्यान	३. धर्मध्यान
२. रौद्रध्यान	४. शुक्ल-ध्यान।

२०. **बीसवां बोल** - छह द्रव्य

१. **धर्मास्तिकाय**

द्रव्य से - एक द्रव्य।

क्षेत्र से - लोक-परिमाण।

काल से - अनादि-अनन्त।

भाव से - अरूपी।

गुण से - गतिशील पदार्थों की गति में उदासीन सहायक।

२. **अधर्मास्तिकाय**

द्रव्य से - एक द्रव्य।

क्षेत्र से - लोक-परिमाण।

काल से - अनादि-अनन्त।

भाव से - अरूपी।

गुण से - पदार्थों के स्थिर रहने में उदासीन सहायक।

३. **आकाशास्तिकाय**

द्रव्य से - एक द्रव्य।

क्षेत्र से - लोक-अलोक-परिमाण।

काल से - अनादि और अनन्त।

भाव से - अरूपी।

गुण से - भाजन गुण। पदार्थों को अवकाश देना, स्थान देना।

४. **काल**

द्रव्य से - अनन्त द्रव्य।

क्षेत्र से - अढ़ाई द्वीप-परिमाण।

काल से - अनादि और अनन्त।

भाव से - अरूपी।

गुण से - वर्तना गुण।

५. **पुद्गलास्तिकाय**

द्रव्य से अनन्त द्रव्य।

क्षेत्र से लोक-परिमाण।

काल से - अनादि और अनन्त।

भाव से - रूपी।

गुण से - गलन-मिलन स्वभाव।

६. **जीवास्तिकाय**

द्रव्य से - अनन्त-द्रव्य।

क्षेत्र से - लोक-परिमाण।

काल से - अनादि और अनन्त।

भाव से - अरूपी।

गुण से - चैतन्य गुण।

२१. इक्कीसवां बोल - राशि दो

१. जीव राशि २. अजीव राशि

२२. बाईसवां बोल - श्रावक के बारह व्रत

१. अहिंसा अणुव्रत ७. भोगोपभोग-परिमाण व्रत

२. सत्य अणुव्रत ८. अनर्थदण्ड-विरति व्रत

३. अस्तेय अणुव्रत ९. सामायिक व्रत

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत १०. देशावकाशिक व्रत

५. अपरिग्रह अणुव्रत ११. पौषध व्रत

६. दिग्विरति व्रत १२. अतिथि संविभाग व्रत ।

२३. तेईसवां बोल - साधु के पांच महाव्रत

१. अहिंसा-महाव्रत ४. ब्रह्मचर्य-महाव्रत

२. सत्य-महाव्रत ५. अपरिग्रह-महाव्रत

३. अस्तेय-महाव्रत

२४. चौबीसवां बोल - भांगा ४९

तीन करण तीन योग से -

तीन करण - करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं ।

तीन योग - मन, वचन, काया ।

अंक ११ का भांगा ६

यहां पहले अंक १ का अर्थ है एक करण और दूसरे अंक १ का अर्थ है एक योग । अर्थात् एक करण और एक योग से ६ भांगे हो सकते हैं, जैसे -

(क) १. करूं नहीं मन से ।
२. करूं नहीं वचन से ।
३. करूं नहीं काया से ।

(ख) ४. कराऊं नहीं मन से ।
५. कराऊं नहीं वचन से ।
६. कराऊं नहीं काया से ।

(ग) ७. अनुमोदूं नहीं मन से ।
८. अनुमोदूं नहीं वचन से ।
९. अनुमोदूं नहीं काया से ।

अंक १२ का भांगा ६

यहां पहले अंक १ का अर्थ है एक करण एवं दूसरे अंक २ का अर्थ है दो योग। अर्थात् एक करण एवं दो योग से ६ भांगे हो सकते है जैसे -

(क) १.करूं नहीं मन से, वचन से ।
२. करूं नहीं मन से, काया से ।
३. करूं नहीं वचन से, काया से ।

(ख) ४. कराऊं नहीं मन से, वचन से ।
५. कराऊं नहीं मन से, काया से ।
६. कराऊं नहीं वचन से, काया से ।

(ग) ७. अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से।

८. अनुमोदूं नहीं मन से, काया से ।

९. अनुमोदूं नहीं वचन से, काया से ।

अंक १३ का भांगा ३

यहां पहले अंक १ का अर्थ है एक करण एवं दूसरे अंक ३ का अर्थ तीन योग। अर्थात् एक करण एवं तीन योग से केवल ३ भांगे हो सकते हैं, जैसे -

(क) करूं नहीं-मन से, वचन से, काया से ।

(ख) कराऊं नहीं-मन से, वचन से, काया से ।

(ग) अनुमोदूं नहीं-मन से, वचन से, काया से ।

अंक २१ का भांगा ९

यहां पहले अंक २ का अर्थ है दो करण एवं दूसरे अंक १ का अर्थ है एक योग। अर्थात् दो करण एवं एक योग से केवल ९ भांगे हो सकते हैं, जैसे -

(क) १. करूं नहीं, कराऊं नहीं मन से ।

२. करूं नहीं, कराऊं नहीं वचन से।

३. करूं नहीं, कराऊं नहीं काया से।

(ख) ४. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से ।

५. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं वचन से।

६. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं काया से ।

(ग) ७. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से।

८. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं वचन से।

९. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं काया से।

अंक २२ का भांगा ९

यहां पहले अंक २ का अर्थ है दो करण और दूसरे अंक २ का अर्थ है दो योग। अर्थात् दो करण एवं दो योग से केवल ९ भांगे हो सकते हैं, जैसे

(क) १. करूं नहीं, कराऊं नहीं मन से, वचन से ।

२. करूं नहीं, कराऊं नहीं मन से, काया से ।

३. करूं नहीं, कराऊं नहीं वचन से, काया से।

(ख) ४. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से।

५. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, काया से।

६. करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं वचन से, काया से।

(ग) ७. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं, मन से, वचन से।

८. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं, मन से, काया से।

९. कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं, वचन से, काया से।

अंक २३ का भांगा ३

यहां पहले अंक २ का अर्थ है दो करण एवं दूसरे अंक ३ का अर्थ है तीन योग। अर्थात् दो करण एवं तीन योग से केवल ३ ही भांगे हो सकते हैं, जैसे -

(क) करूं नहीं, कराऊं नहीं मन से, वचन से, काया से।

(ख) करूं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से, काया से।

(ग) कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से, काया से।

अंक ३१ का भांगा ३

यहां पहले अंक ३ का अर्थ तीन करण एवं दूसरे अंक १ का अर्थ है एक योग। अर्थात् तीन करण एवं एक योग से केवल ३ भांगे हो सकते हैं, जैसे-

(क) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से।

(ख) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं वचन से ।

(ग) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं काया से।

अंक ३२ का भांगा ३

यहां पहले अंक ३ का अर्थ है तीन करण एवं दूसरे अंक २ का अर्थ है दो योग। अर्थात् तीन करण एवं दो योग से केवल तीन भांगे हो सकते हैं, जैसे

(क) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से वचन से।

(ख) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, काया से।

(ग) करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं वचन से,काया से।

अंक ३३ का भांगा १

यहां पहले अंक ३ का अर्थ है तीन करण एवं दूसरे अंक ३ का अर्थ है तीन योग। अर्थात् तीन करण एवं तीन योग से केवल एक ही भांगा हो सकता है, जैसे -

१. करूं नहीं, कराऊं नहीं, अनुमोदूं नहीं मन से, वचन से, काया से

२५. **पच्चीसवां बोल** चारित्र पांच

१. सामायिक चारित्र
२. छेदोपस्थापनीय चारित्र
३. परिहार विशुद्धि चारित्र
४. सूक्ष्मसम्पराय चारित्र
५. यथाख्यात चारित्र

प्रश्न :

१. श्रावक के बारह व्रत कौन से हैं?

२. जीवास्तिकाय का गुण कौनसा होता है?

३. अठारहवां बोल लिखें।

३. वैमानिक देवों का दण्डक बताएं।

५. आश्रव के भेदों का उल्लेख करे।

४

अणुव्रत-गीत

संयममय जीवन हो।

नैतिकता की सुर-सरिता[1] में जन-जन-मन पावन[2] हो॥

१. अपने से अपना अनुशासन, अणुव्रत की परिभाषा,
वर्ण, जाति या संप्रदाय से, मुक्त धर्म की भाषा।
छोटे-छोटे संकल्पों से, मानस परिवर्तन हो॥

२. मैत्रीभाव हमारा सबसे, प्रतिदिन बढ़ता जाए।
समता, सह-अस्तित्व, समन्वय-नीति सफलता पाये।
शुद्ध साध्य के लिए नियोजित[3] मात्र शुद्ध साधन हो॥

३. विद्यार्थी या शिक्षक हो, मजदूर और व्यापारी।
नर हो नारी, बने नीतिमय, जीवन-चर्या सारी।
कथनी-करनी की समानता, में गतिशील चरण हो॥

---

१. गंगा २. पवित्र ३. संयोजित

४. प्रभु बन करके ही हम, प्रभु की पूजा कर सकते हैं।
प्रामाणिक बनकर ही, संकट-सागर तर सकते हैं।
आज अहिंसा-शौर्य-वीर्य-संयुत जीवन-दर्शन हो॥

५. सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।
तुलसी 'अणु' का सिंहनाद, सारे जग में प्रसरेगा।
मानवीय आचार-संहिता में अर्पित तन-मन हो॥

प्रश्न :

१. अणुव्रत गीत के दो पद लिखो।

२. अणुव्रत गीत का तीसरा पद कौन-सा है ?

३. 'कथनी-करनी की समानता' .... इस पंक्ति को पूरा करो।

५

अमर रहेगा धर्म हमारा

अमर रहेगा धर्म हमारा।
जन-जन-मन अधिनायक प्यारा,
विश्व-विपिन का एक उजारा।
असहायों का एक सहारा,
सब मिल यही लगाओ नारा॥

१

धर्म धरातल अतुल निराला,
सत्य अहिंसा-स्वरूप वाला।
मैत्री का यह मधुमय प्याला,
सत् पुरुषों ने सदा रुखारा॥

२

व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म समाया,
जाति-पांति का भेद मिटाया।
निर्धन-धनिक न अन्तर पाया,
जिसने धारा जन्म सुधारा॥

३

राजनीति से पृथक् सदा है,
द्वेष-राग से धर्म जुदा है।
मोक्ष-प्राप्ति का लक्ष्य यदा है,
आत्म-शुद्धि की बहती धारा॥

४

आडम्बर में धर्म कहां है ?,
स्वार्थ-सिद्धि में धर्म कहां है ?
शुद्ध साधना धर्म वहां है,
करते हम हर वक्त इशारा॥

५

धर्म नाम से शोषण करते,
धर्म नाम से निज घर भरते।
धर्म नाम से लड़ते-भिड़ते,
कैसा धर्म बना बेचारा॥

६

प्रलयंकर पवन भी बाजे,
तूफानों की हो आवाजें।
पलटें सब जग रीति-रिवाजें,
पर इसका ध्रुव अटल सितारा॥

७

धर्म-नाम पर डटे रहेंगे,
सत्य-शोध में सटे रहेंगे।
'तुलसी' सब कुछ स्वयं सहेंगे,
काटें कुटिल कर्म की कारा॥

प्रश्न :

१. अमर रहेगा धर्म हमारा के रचनाकार कौन है ?
२. गीत के कोई दो पद्य लिखे।
३. धर्म नाम से.....पद्य को पूरा करे।

६

प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव

जैन-परंपरा में काल के दो विभाग किए गए हैं - उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी में क्रमशः उन्नति होती है और अवसर्पिणी में क्रमशः अवनति होती है। प्रत्येक काल-विभाग में छह-छह आरे (विभाग) होते हैं। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पांचवां विभाग (दुःषमा आरा) चल रहा है।

तीसरे काल-विभाग की बात है। कुलकर नाभि के घर ऋषभदेव का जन्म हुआ। ऋषभ की माता का नाम मरुदेवा था। ऋषभ कुमार बड़े हुए। उन्होंने सुनन्दा और सुमंगला के साथ विवाह किया। सुनन्दा ने एक पुत्री और एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्री का नाम सुन्दरी और पुत्र का नाम बाहुबलि रखा गया । सुमंगला के एक कन्या ब्राह्मी और भरत आदि ९९ पुत्र हुए ।

भगवान् ऋषभ से पहले 'यौगलिक' युग था। उस समय भाई-बहिन का जोड़ा उत्पन्न होता था। इस युगल उत्पत्ति के कारण इस युग को यौगलिक युग कहा गया है। उस समय में न समाज था, न कोई

स्वामी था और न कोई सेवक । कल्पवृक्षों से लोगों के जीवन की आवश्यकताएं पूरी हो जाती थीं। अधिकांश लोग अरण्यवासी थे। राजा ऋषभदेव उस युग के प्रथम राजा बने । उनकी जन्मजात प्रतिभा से लोग नए युग के निर्माण में जुट गए । अनेक नगर बसाए गए । लोग अरण्यवास छोड़कर नगरों में रहने लगे। उन्होंने लोगों को असि (सुरक्षा), मसि (व्यवसाय), कृषि (खेती), सेवा आदि कर्त्तव्यों का निर्देश दिया, अपने पुत्र भरत को ७२ कलाएं सिखाई। अपनी पुत्री ब्राह्मी को १८ लिपियों और सुन्दरी को गणित आदि का अध्ययन करवाया । लोग अपने-अपने कार्यों में दक्ष बन गए और उनके राज्य में सुखपूर्वक रहने लगे । उन्होंने लम्बे समय तक राज्य किया । अन्त में अपने सौ पुत्रों को अलग-अलग राज्यों का भार सौंप कर, चैत्र कृष्णा अष्टमी को मुनि बन गए ।

एक हजार वर्ष की साधना के बाद उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ । चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर वे इस युग के प्रथम तीर्थंकर हुए । उनके ९८ पुत्रों ने राज्य का त्याग कर उन्हीं के पास दीक्षा ग्रहण कर ली । भगवान् ऋषभ एक लाख पूर्व तक श्रामण्य का पालन कर निर्वाण को प्राप्त हो गए ।

भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए। उनके नाम पर ही इस भू-भाग का नाम भारत हुआ। एक दिन वे अपने कांच-महल में बैठे-बैठे प्रेक्षाध्यान कर रहे थे। शरीर की प्रेक्षा चल रही थी। एकाग्रता बढ़ी । अनित्यता का स्पष्ट बोध हुआ। वहां बैठे-बैठे ही वे केवली हो गए ।

बाहुबली ने अहं के कारण पिता ऋषभ के पास दीक्षा नहीं ली । वे स्वयं दीक्षित होकर एक वर्ष तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े रहे । अहं शेष था। अपनी बहिन साध्वी ब्राह्मी और सुन्दरी के उपदेश से उनका अहं टूटा। वे भी केवली हो गए ।

माता मरुदेवा अपने पुत्र भगवान् ऋषभ के दर्शन करने हाथी पर चढ़ कर गई । भगवान् समवसरण में विराजमान थे।

मरुदेव की भावना में उत्कर्ष आया। वह हाथी पर बैठी-बैठी ही केवल - ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो गई ।

प्रश्न :

१. **ऋषभदेव कौन थे ? उनका जन्म किस काल-विभाग में हुआ ?**
२. **उन्होंने अपने पुत्र को कितनी कलाएं सिखायीं ?**
३. **भरत चक्रवर्ती को केवल-ज्ञान किस स्थान में हुआ ?**
४. **बाहुबलि को केवल-ज्ञान क्यों नहीं हुआ ?**

७

भगवान् पार्श्वनाथ

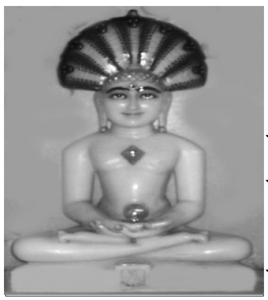

भगवान् पार्श्वनाथ जैन शासन के २३वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म वाराणसी में हुआ। उनके पिता का नाम अश्वसेन व माता का नाम वामा देवी था।

विक्रम पूर्व आठवीं शताब्दी के लगभग भारतवर्ष के कोने-कोने में हठयोग का बोलबाला था। धर्म के नाम पर दंभ की गहरी छाप लग चुकी थी। लोग वास्तविक धर्म को छोड़ बाहरी दिखावे में बह चुके थे। उन्हीं दिनों की बात है, बनारस के बाहर बगीचे में एक साधु पञ्चाग्नि तप रहा था। वहां के राजकुमार पार्श्वनाथ टहलते हुए वहां आ पहुंचे जहां पञ्चाग्नि तप के दर्शनार्थ एक बड़ी भीड़ जमा हो रही थी। राजकुमार ने अपने विशिष्ट ज्ञान (अवधिज्ञान) से देखा कि धांय-धांय जलते हुए लकड़ों में से एक लकड़े की खोखाल में सांप का एक जोड़ा तिलमिला रहा है। राजकुमार ने जनता और उस तपस्वी को सावधान करते हुए कहा कि ऐसी अज्ञान तपस्या को तिलाञ्जलि दे दो। भला, यह भी कोई तपस्या है, जिसमें सांप जल रहे हों ? यह सुनते ही वह साधु चौंका और राजकुमार की बात पर बिगड़ गया। राजकुमार के आदेश से सेवकों ने

उस लक्कड़ को फाड़ा तो उसमें झुलसा हुआ सांप का जोड़ा निकला। राजकुमार ने सर्प-सर्पिणी को नमस्कार मन्त्र सुनाया और समभाव रखने का उपदेश दिया। उन्होंने राजकुमार के उपदेश को शिरोधार्य कर सद्भावना के साथ जीवन को समाप्त किया। दोनों मरकर असुरकुमार देवताओं के अधिनायक धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। सारे लोग राजकुमार की प्रशंसा करते हुए अपने घर लौट आये। साधु मन-ही-मन राजकुमार पर कुढ़ा, पर उसकी एक भी नहीं चली। लोगों की भी वैसे अज्ञान-पूर्ण क्रियाकाण्डों से आस्था हट गई। कुछ समय बाद राजकुमार ने अपने पिता और माता की अनुमति पाकर दीक्षा ग्रहण की।

एक बार वे अहिच्छत्र वन में ध्यानस्थ खड़े थे। उधर से कोई पूर्व जन्म का द्वेषी देव जा रहा था। इन्हें देखते ही उसका वैर जागृत हो गया। उसने ध्यानस्थ भगवान् को अनेक उपसर्ग दिए। उन पर कंकरों की वर्षा की, परन्तु वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। तब उसने क्रोध में आकर मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ की। आकाश में दिल दहलाने वाली मेघ-गर्जना होने लगी। कुछ ही क्षणों में चारों ओर पानी ही पानी हो गया। भगवान् पार्श्व पानी में डूबने लगे। पानी गले तक आ गया।

उधर नाग-नागिन-धरणेन्द्र-पद्मावती ने अवधि ज्ञान से देखा कि हमारे उपकारी भगवान् पार्श्व को कोई दुष्ट देव उपसर्ग दे रहा है। तत्काल दोनों नीचे आये और उन पर सर्प-फण की छाया करके उनका उपसर्ग शान्त किया। उसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने चार तीर्थ की स्थापना की। अहिंसा, सत्य आदि का प्रचार किया। एक-एक कर लाखों-करोड़ों मनुष्य उनकी अमृतमयी वाणी का पान कर संसार-सिंधु से पार पाने में जुट गये।

भगवान् पार्श्वनाथ का विहार अधिकतर बिहार, कुरू, कौशल, काशी, अवन्ति, अंग, बंग, कलिंग, पांचाल, मगध, विदर्भ, दशार्ण,

कर्नाटक, कश्मीर आदि देशों में हुआ। सौ वर्ष की आयु पूरी कर श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन समैद शिखर पर्वत पर मुक्त हो गये। आज भी समैद शिखर (बिहार राज्य) को 'पार्श्वनाथ हिल' कहा जाता है।

प्रश्न :

१. पञ्चाग्नि तापते हुए तापस को राजकुमार पार्श्वनाथ ने तपस्या छोड़ने को क्यों कहा ?

२. लक्कड़ फाड़ने पर सांप का जोड़ा निकला तो राजकुमार ने क्या किया ?

३. भगवान पार्श्वनाथ की आयु कितनी थी ? उनके विहार क्षेत्र कौन-से थे ?

८

आचार्य श्री भारमल जी (१)

तेरापंथ के द्वितीय आचार्य श्री भारमलजी का जन्म वि. संवत् १८०४ में मुहां ग्राम (मेवाड़) में हुआ था। आपके पिता का नाम किशनोजी व माता का नाम धारिणी था। १० वर्ष की अवस्था में आपने अपने पिता के साथ स्थानकवासी सम्प्रदाय में भीखणजी स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली थी। आप सहज, सरल, विनीत एवं दृढ़ श्रद्धालु थे। आपका सत्य पर अटल विश्वास था। बचपन से ही आप सत्य के पक्षपाती थे। सत्य के सामने आप जीवन को नगण्य समझते थे। इसका ज्वलन्त प्रमाण हमें आपके सागार-अनशन से मिलता है।

आचार्यश्री भीखणजी जब स्थानकवासी सम्प्रदाय से पृथक् हुए तब भारमलजी स्वामी और उनके पिता किशनोजी भी आचार्यश्री के अनुगामी साधुओं में सम्मिलित थे। किशनोजी स्वभाव के क्रोधी थे। वे थोड़ी-थोड़ी बातों में ही गर्म हो जाते थे। इसलिए स्वामीजी ने उन्हें अपने साथ दीक्षित करने से इन्कार कर दिया। किशनोजी ने कहा - 'यदि आप मुझे साथ नहीं लेंगे तो मैं भारमल को भी आपके साथ नहीं

जाने दूंगा।' स्वामीजी ने कहा - 'जैसी तुम्हारी इच्छा।' किशनोजी ने भारमलजी स्वामी को अपने साथ चलने के लिए कहा। यद्यपि आचार्यश्री की सेवा से एक क्षण भी अलग रहने की उनकी इच्छा न थी, तो भी परिस्थिति ने उन्हें पिता के साथ चले जाने को बाध्य कर दिया। उन्होंने सोचा था कि पिता की अनुमति के बिना आचार्यश्री अपने साथ दीक्षित नहीं करेंगे, इसलिए ज्यों-त्यों पिताजी के साथ रहकर उनकी अनुमति लेना ही उचित है। आप झट उठे और पिता के साथ चले गये। कहीं एक जगह जाकर ठहरे। वहां किशनोजी को शांत देखकर आप बोले - आप मुझे स्वामी भीखणजी के साथ रहने की अनुमति दें। मैं उनके साथ रहकर शुद्ध संयम का पालन करूं, इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

किशनोजी ने पुत्र की बात पर ध्यान नहीं दिया, तब मुनि भारमलजी बोले - 'अच्छा जैसी आपकी इच्छा। मैं आपके साथ रहूंगा, पर मेरी एक बात सुन लें, मुझे आपके हाथों से चारों आहार पानी लेने का जीवन-पर्यन्त त्याग है, अर्थात् न तो मैं कुछ खाऊंगा और न जल पीऊंगा।' पिता ने कहा - 'अच्छा मत खाना, रहना तो मेरे साथ ही पड़ेगा।' किशनोजी ने बालक समझकर उनकी बात पर कुछ ख्याल नहीं किया।

पिता और पुत्र दोनों वहां से आगे चले और एक दूसरी जगह जाकर ठहर गये। भिक्षा के समय पिता भिक्षा लाये और उन्हें भोजन करने के लिए विवश करने लगे। भारमलजी स्वामी ने अपने अनशन की याद दिलाते हुए कहा - 'पिताजी ! अगर सूर्य पूर्व से पश्चिम में उदय हो जाये तो भी मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हो सकती। मैंने जो कुछ किया है, वह सब सच्चाई के आधार पर किया है और मैं उस पर अटल हूं। मेरी प्रार्थना मानकर आप भोजन करें। मैं तो इस शरीर के रहते हुए यहां भोजन नहीं कर सकता।' पिता ने जो बात सहज समझी थी, वह

अब एक जटिल समस्या बन गई। किशनोजी कभी झिड़कते और कभी भोजन करवाने की कोशिश करते, पर मुनि भारमलजी ने उनकी एक बात न मानी।

एक दिन बीत गया। उन्होंने न तो कुछ खाया और न कुछ पीया। दूसरे दिन भी पिता ने वैसे ही आग्रह किया। उन्हें समझाने की तरह-तरह की चेष्टाएं की, पर उस चतुर्दश वर्षीय बालक के दृढ़ निश्चय के सामने सब चेष्टाएं बेकार हुई। आखिर पिता ने कहा - 'पुत्र ! यह क्या, तू मेरे साथ रहना तक नहीं चाहता ?' भारमल स्वामी ने इसका उत्तर देते हुए कहा - 'पिताजी ! आपके साथ रहने से नाराज नहीं हूं। मैंने तो आपके साथ ही दीक्षा ली थी और आज तक आपके साथ ही रहता आया हूं। पर अब मुझे एक ही लगन है कि जिस उद्देश्य से घर-बार छोड़ा, उस लक्ष्य तक पहुंच जाऊं। इसलिए मैं आपसे इतना आग्रह करता हूं कि आप मुझे आचार्यश्री के साथ दीक्षित होने की आज्ञा दे दें।'

बालक के दृढ़ निश्चय के सामने पिता झुक गये और तीसरे दिन उन्हें आचार्य भिक्षु को सौंप दिया। उन्होंने कहा-यह आपके पास ही रंजित है, अतः इसे रखिए और पारणा करवाइए। मुझे अकेले न भटकना पड़े, अतः मेरा भी कोई स्थान जमा दीजिए। स्वामीजी ने तब मुनि भारमलजी को पारणा करवाया और मुनि किसनोंजी को आचार्य जयमलजी को सौंप दिया। दो दिन की तपस्या का उनके हाथों पारणा हुआ और आपने आचार्य भिक्षु के साथ केलवा (मेवाड़) में दीक्षा ग्रहण की।

निर्भीकता

मुनि श्री भारमलजी बचपन से बड़े निर्भीक सन्त थे। एक बार की बात है, आचार्य भिक्षु का प्रथम चतुर्मास केलवा की अंधेरी ओरी में हुआ। रात्रि में परिष्ठापन करने के लिए मुनि भारमलजी बाहर गये।

वापस आते समय मार्ग में एक सांप उनके पांव में लिपट गया। शान्त भाव से आप वहीं खड़े रह गये। श्रीमद् भिक्षु स्वामी को मालूम होते ही वे बाहर आये। 'नवकार मंत्र' और 'मंगल पाठ' का उच्चारण किया। सर्प तत्काल पांव छोड़कर चला गया। चौदह वर्ष की अल्प अवस्था में आपकी निर्भय वृत्ति आश्चर्यजनक थी।

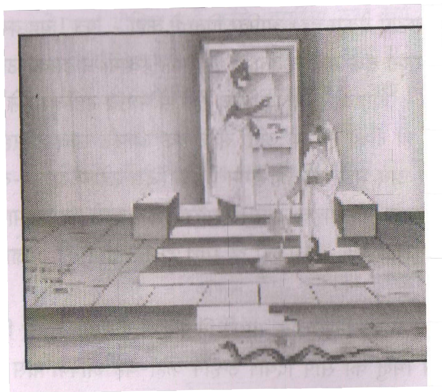

प्रश्न

१. भारमलजी स्वामी ने सागार अनशन क्यों किया ?

२. आचार्य श्री भीखणजी ने किशनोजी को साथ में क्यों नहीं रखा ?

३. भारमलजी स्वामी के अनशन का पारणा कितने दिन बाद हुआ ?

४. आचार्य भारमलजी का जन्म कहाँ हुआ ?

६

आचार्य श्री भारमलजी (२)

आचार्य भीखणजी के शिष्यों में भारमलजी स्वामी उनके परम भक्त और प्रमुख शिष्य थे। वे आचार्यश्री के आदेश को जीवन से अधिक मूल्यवान् मानते थे। स्वामी भीखणजी के सामने बहुत कुछ काम करने बाकी थे। उन्हें विनीत तथा अनुशासन सहने वाले अनुगामियों की आवश्यकता थी। भारमलजी स्वामी का इसमें पूरा सहयोग रहा। स्वामीजी साधुओं को संगठित करने के लिए जो कोई नियम बनाते वह पहले-पहले प्रायः भारमलजी स्वामी पर लागू करते, जिसका दूसरों पर अच्छा असर पड़ता। ईर्या-समिति वाली घटना कितनी आकर्षक और इस प्रणाली की सूचक है! स्वामीजी ने भारमलजी स्वामी से कहा - 'अगर कोई तुम्हारे में ईर्या-समिति की त्रुटि बता देगा तो तुझे एक तेला - अर्थात् लगातार तीन उपवास करने पड़ेंगे।' आपने कहा - 'गुरुदेव ! अगर कोई झूठ-मूठ द्वेष के कारण कह दे तो ? स्वामीजी ने कहा - 'अगर सच हो तो समझ लेना प्रायश्चित्त है और यदि झूठ हो तो समझ लेना पुराने बांधे हुए कर्मों का उदय हुआ है, पर तेला तो करना ही पड़ेगा।' आपने वह आदेश सहर्ष स्वीकार कर लिया। आपकी सावधानी बड़ी विलक्षण थी। सारे जीवन में एक भी तेला नहीं करना पड़ा।

आपके अनन्य गुणों से आकृष्ट होकर आचार्य भिक्षु ने वि. सं. १८३२ बिठोड़ा में आपको युवाचार्य बना दिया। १८३२ से ६० की (२८) साल तक आप आचार्यवर की सेवा करते रहे और उसके बाद स्वामीजी का स्वर्गवास होने पर आपने द्वितीय आचार्यका पद अलंकृत किया। आपका साहस अटूट था। आप कष्टों से कभी नहीं घबराते थे।

शहर छोड़ जाने का आदेश

एक बार उदयपुर के राणा भीमसिंहजी को कुछ विरोधी लोगों ने बताया कि तेरापंथ के पूज्य भारमलजी दया-दान के निषेधक हैं। वे जहां रहते हैं वहां वर्षा नहीं होती। यदि इनका चतुर्मास यहां हुआ तो प्रजा को बड़ा भारी कष्ट होगा।

राणाजी ने उनकी बातें सही समझ आपको शहर छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दी। आप साधुत्व के नियमानुसार वहां से विहार कर राजनगर पधार गए। बाद में वहां के निवासी केसरजी भंडारी ने एकान्त अवसर मिलने पर कहा - 'जो सन्त चींटी को भी नहीं सताते उनको आपने नगर से निकाल दिया है। अब सुनता हूं मेवाड़ से निकाल देने का विचार किया जा रहा है, परन्तु आप इस बात की गांठ बांध लें कि जिस राज्य में संतों को सताया जाता है, प्रकृति उसे कभी क्षमा नहीं करती। सन्तों को निकाल देने के पश्चात् यहां जो अप्रिय घटनाएं घटी हैं वे प्रकृति के रोष का ही परिणाम है'। केसरजी ने महाराणा को सारी वस्तुस्थिति से अवगत कराया। महाराणा को अपनी भूल का बहुत पश्चात्ताप हुआ।

महाराणा ने तत्काल अपने हाथ से एक पत्र लिखा कि - '**आप दुष्टता करने वाले उन दुष्टों की ओर न देखें। मेरी तथा नगर की प्रजा की ओर देखकर दया करें।**' यह पत्र अपने आदमी को दे, उसे आचार्य श्री भारमलजी के पास भेजा जिसमें वापस उदयपुर आने के लिए प्रार्थना की थी। आचार्यश्री वृद्धावस्था के कारण दूसरी

बार वहां नहीं पधारे। राणाजी ने दूसरा 'रुक्का' भेज वहां पधारने की प्रार्थना की। तब आपने उनके विशेष आग्रह पर मुनि हेमराजजी आदि १३ संतों को वहां भेजा। कहते हैं राणाजी ने उस प्रवास काल में ११ बार संत-संगत का लाभ लिया। आचार्यश्री भारमलजी के जीवन की ऐसी अनेक घटनाएं हैं जिनसे आपके सहज गुणों की आभा झलक पड़ती है।

आपमें स्वाध्याय की लगन भी अद्वितीय थी। रात में खड़े-खड़े आप दो-दो हजार श्लोकों का पुनरावर्तन कर डालते थे। आपके शासनकाल में ३८ साधु और ४४ साध्वियां दीक्षित हुई थी।

वि. सं. १८७८ माघ बदी ८ के दिन राजनगर में आपका स्वर्गवास हो गया। अन्तिम समय में आपको दो प्रहर का अनशन आया। आपके उत्तराधिकारी आचार्य रायचंदजी हुए, जिन्हें आप अपने स्वर्गवास के एक वर्ष पहले ही नियुक्त कर दिया था।

प्रश्न :

१. भारमलजी के लिए तेले का दण्ड क्यों निश्चित किया गया ?
२. आप कितने वर्षों तक युवाचार्य रहे ?
३. आपके शासन-काल में कितने साधु-साध्वियां दीक्षित हुए ?
४. आपके उत्तराधिकारी कौन थे ?
५. आपके स्वर्गवास का संवत् बताओ।

१०

आचार्य रायचन्दजी

जन्म और दीक्षा

आचार्य रायचन्दजी तेरापंथ के तृतीय आचार्य थे। उनका जन्म राजस्थान के उदयपुर डिवीजन (मेवाड़) में बड़ी रावलिया (गोगुन्दा के पास एक छोटा गांव) में विक्रम संवत् १८४७ में एक सम्पन्न परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम शाह चतरोजी तथा माता का नाम कुशलांजी था।

दस वर्ष की अवस्था में वि.सं. १८५७ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को रावलिया में स्वामी भीखणजी के हाथों उनकी दीक्षा हुई थी।

सरस व्याख्यनी

मुनिश्री रायचन्दजी ने थोड़े ही समय में आगमों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अनेक सूत्र उनके कंठस्थ थे। समस्त आगमों का अनेक बार उन्होंने अर्थ सहित स्वाध्याय किया था। धर्म-चर्चा करने में भी वे बड़े निपुण थे।

वे व्याख्यान बहुत सरस देते थे। अनेक व्याख्यान उनके कण्ठस्थ थे। स्वर में माधुर्य था। आवाज बड़ी तेज थी। कहा जाता है,

जब वे व्याख्यान देते तब आस-पास के गांवों तक उनकी आवाज सुनाई देती।

युवाचार्य

मुनि रायचन्दजी भिक्षु स्वामी के अत्यंत विश्वास-पात्र थे। उनके बाद द्वितीय आचार्य भारमलजी स्वामी के भी वे उतने ही विश्वासपात्र बन गए। संघ की आंतरिक व्यवस्था में उनका परामर्श लिया जाता था। भारमलजी स्वामी की अवस्था वृद्ध हो चुकी थी। वे अपने उत्तराधिकारी का निर्णय कर घोषणा करना चाहते थे, परन्तु संघ में अनेक साधु योग्य होने के कारण वे एक नाम का निर्णय नहीं कर पा रहे थे।

तेरापंथ संघ में भावी आचार्य के चुनाव में आचार्य किसी से परामर्श लें यह आवश्यक नहीं है, परन्तु आचार्य भारमलजी ने मुनि हेमराजजी व खेतसीजी को (इनका नाम भी भावी आचार्यों के रूप में लिया जाता था) बुलाकर उनसे परामर्श किया। दोनों ही सन्तों ने आचार्य भारमलजी के विचारों का स्वागत किया और कहा - 'आप हम सन्तों की ओर से निश्चिंत रहकर संघ के भावी हित के लिए अपने निर्णयानुसार निर्देश करें। हम सब आपके निर्णय को सहर्ष स्वीकार करेंगे। युवक साधु रायचन्दजी इस भार के लिए सर्वथा योग्य हैं। आप उन्हें अपना उत्तराधिकार सौंप दें।'

आचार्य भारमलजी उनके विचारों से प्रभावित हुए। आपने उत्तराधिकार-पत्र लिखा। नियुक्ति-पत्र में दो व्यक्तियों का नामोल्लेख करते हुए लिखा - 'सर्व साधु-साध्वी खेतसीजी तथा रायचन्दजी री आगन्यां मांहे चालणों।' इस पर पास बैठे बालसाधु जीतमलजी (जयाचार्य) ने निवेदन किया - 'गुरुदेव ! आप चाहें, जिसका नाम लिखें, परन्तु नाम एक ही होना चाहिए।'

इस सुझाव पर आचार्य भारमलजी ने केवल एक नाम मुनि रायचन्दजी का ही रखा। उस पत्र को सबके सम्मुख पढ़कर सुनाया गया और विधिवत् मुनि रायचन्दजी को युवाचार्य बना दिया गया। यह कार्य वि.सं. १८७८ वैशाख कृष्णा नवमी को केलवा में सम्पन्न हुआ था।

आचार्य-काल

आचार्य रायचन्दजी (ऋषिराय) सं. १८७८ माघ कृष्णा ९ को राजनगर में आचार्य पद पर आसीन हुए। वे शारीरिक दृष्टि से बड़े सबल और निरोग थे। उनका लम्बा कद और ओजस्वी व्यक्तित्व दूसरों को शीघ्र ही प्रभावित करने वाला था। वे औषध-सेवन से स्वयं तो दूर रहा ही करते अपितु दूसरों को भी कम से कम औषध-सेवन के लिए सलाह देते थे। औषध के सहारे जीने वालों को वे निर्बल व्यक्ति माना करते थे।

अपने आचार्य काल में उन्होंने अनेक नई मर्यादाओं का निर्माण किया ओर अनेक ऐसी व्यवहार-पद्धतियां प्रचलित की जो संघ के लिए बहुत हितकारी सिद्ध हुई। उनके युग में तपस्या की भी बहुत वृद्धि हुई। उनमें आछ (छाछ के ऊपर निथरने वाला पानी) के आगार से होने वाली आठ छह-मासी तपस्याएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

तम्बाकू पर नियंत्रण

उनके समय में कुछ साधु तम्बाकू सूंघा करते थे। दूसरे संघों से आकर दीक्षित होने वाले साधु विशेष रूप से इस आदत में विवश पाये जाते थे। ऋषिराय इस बात को अच्छा नहीं समझते थे। उन्हें भय था कि कहीं यह प्रवृत्ति एक से दूसरे में संक्रमण करती हुई पूरे संघ में न फैल जाए। अस्तु, उन्होंने तम्बाकू सूंघने पर इतना कड़ा नियन्त्रण किया कि कोई साधु नए सिरे से तो सूंघना आरम्भ करे ही नहीं, किन्तु जो पहले से सूंघता हो वह भी उसे छोड़ने में ही लाभ समझे। वस्तुतः

उन्होंने 'माल से भी जगात्' को भारी बनाकर इस प्रवृत्ति को संघ से समूल उठा दिया। आज तो तेरापंथी श्रावक यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि साधु को तम्बाकू सूंघना भी कल्पता है क्या ?

कोई राजपूत भी है ?

ऋषिराय बड़े निर्भीक व्यक्ति थे। वे अपनी बात इतने प्रभावशाली ढंग से कहते थे कि सम्मुखीन व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। वह एक बार तो घबरा तक जाता था।

एक बार वे मेवाड़ में विहार कर रहे थे। कुछ सन्त उनसे कुछ दूर चल रहे थे। उन दिनों वहां डाकुओं का काफी जोर था। गांवों के ठाकुर डाका डालने में रस लेते थे। एक बार विहार में उनसे आगे चलने वाले सन्तों को कुछ घुड़सवार डाकू मिले। सन्तों को सामान नीचे रखने के लिए कहा। सन्तों ने कहा - 'हमारे पास कोई धन नहीं है। हम तो साधु हैं। हमारे पास पहनने और ओढ़ने की आवश्यक सामग्री के सिवाय कुछ नहीं है।' इतने में एक डाकू ने एक साधु के कंधे पर पड़ी कम्बल को लेने की चेष्टा की। तत्काल उस साधु ने अपनी कम्बल को नीचे बिछा लिया और उस पर बैठ गया। डाकू भी घोड़े से नीचे उतरा और कम्बल को खींचकर निकालने लगा। ऋषिराय पीछे दूर से यह सारा दृश्य देख रहे थे। वे पहचान गये कि ये लोग डाकू हैं। तत्काल ऊंचे स्वर में 'हाकल' करते हुए उन्होंने कहा - ''सारे गोले ही गोले एकत्रित हुए हो या कोई राजपूत भी है ?'' ऋषिराय की यह तेज आवाज काफी दूर तक फैल गई। डाकू टोली का सरदार पीछे चल रहा था, तत्काल आगे आया। उस समय तक ऋषिराय उन संतों के पास पहुंच चुके थे। ठाकुर ने आते ही पूछा - ''क्यों महाराज ! आपको राजपूत की आवश्यकता क्यों पड़ गई ?'' ऋषिराय ने कहा - ''नहीं, हमें कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है। मैं तो जानना चाहता था कि इनमें

कोई राजपूत भी है या नहीं ? क्योंकि मेरा विश्वास था कि राजपूत अभी तक इतना पतित नहीं हुआ है कि जो सन्तों को भी लूटने का साहस करे!'' ठाकुर व कम्बल लेने वाला डाकू ऋषिराय के कथन को सुनकर लज्जित हुए। उन्होंने चरणों में नमस्कार करते हुए अपनी गलती स्वीकार की। ठाकुर ने कहा - ''महाराज ! पीछे भी हमारे कुछ साथी आ रहे हैं। आपको कोई तकलीफ न हो इसलिए ये दो आदमी आपको गांव तक छोड़कर आएंगे।''

'नखेद' तिथि

ऋषिराय मुहूर्त्त पर अधिक विश्वास नहीं करते थे। अपने पुरुषार्थ पर भरोसा रखने वाला व्यक्ति ज्योतिष के चक्कर में नहीं फंसा करता। वे जिस दिन आचार्य-पद पर आसीन हुए थे उस दिन ज्योतिष के आधार पर 'निषिध तिथि' थी। निषिध तिथि शुभ कार्य के लिए वर्जित मानी जाती है। मेवाड़ में 'निषिध' का उच्चारण 'नखेद' करते हैं। अतः किसी ने प्रार्थना की कि महाराज! आज 'नखेद' तिथि है। तत्काल ऋषिराय ने 'नखेद' को 'न खेद' मानकर भिन्न अर्थ करते हुए कहा - ''तब तो बहुत अच्छा दिन है। क्योंकि उसमें हमें किसी प्रकार का खेद नहीं होगा।'' इस प्रकार वे बड़े निर्भीक व्यक्ति थे।

यात्राएं

ऋषिराय को यात्रा का बड़ा शौक था। उन्होंने अपने जीवन में अनेक नए प्रदेशों की यात्राएं कीं।

उन यात्राओं में तेरापंथ का अच्छा प्रचार हुआ। अनेक लोग तेरापंथी बने। तेरापंथ के क्षेत्र-विस्तार का उन्होंने एक नया सूत्रपात किया। थली (बीकानेर राज्य) उन्हीं के समय से तेरापंथ का विहार-क्षेत्र बना। मालव में जाने वाले ये ही प्रथम आचार्य थे। वहां अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ हुआ। फलतः वहां के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

उनके भक्त बन गये।

गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ में सर्वप्रथम उन्हीं का पदार्पण हुआ। उससे पूर्व तेरापंथ का कोई साधु भी वहां नहीं गया था। उपर्युक्त तीनों प्रदेशों की एक साथ यात्रा करके उस समय उन्होंने लगभग १४०० मील (२२४० किलोमीटर) का मार्ग तय किया था।

थली में पदार्पण

उस समय की थली (बीकानेर राज्य) आज की थली से सर्वथा भिन्न थी। मोटा खाना, मोटा पहनना, खेती व पशुपालन कर अपनी आजीविका चलाना, कच्चे गोबर के लिपे हुए मकान तथा घास के झोंपड़े। न रेल और न सड़क। बड़े-बड़े रेत के टीले आने-जाने वाले व्यक्ति को थका देते थे। ऐसी थी उस समय की थली।

वहां के अधिकांश ओसवाल यति-सम्प्रदाय को मानने वाले थे। आचार्य भिक्षु का थली में पदार्पण हुआ था, किन्तु किसी कार्य विशेष से। धर्म-प्रचार हेतु सर्वप्रथम आचार्य रायचन्दजी का ही यहां पदार्पण हुआ।

ऋषिराय के पदार्पण से वहां के लोगों को अच्छा लाभ मिला। उन्होंने वहां अपना प्रथम चतुर्मास बीदासर में किया। अन्य अनेक गांवों में साधु-साध्वियों के चातुर्मास कराए। आज का थली क्षेत्र ऋषिराय के उस धर्म-प्रचार का ही सुफल है।

शरीरान्त

ऋषिराय के शरीर में यदा-कदा श्वास का प्रकोप रहता था, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ जिस पर विशेष ध्यान दिया जाता। थोड़े-थोड़े विश्राम मात्र से वह प्रायः ठीक हो जाया करता था। वि.सं. १९०८ का चतुर्मास उदयपुर में था। चतुर्मास के बाद उदयपुर के आस-पास के क्षेत्रों में विचरते हुए आप छोटी रावलिया पधारे। वहां

माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन शौच के निमित्त ग्राम बाहर जाते समय आपको श्वास कुछ भारी महसूस हुआ। फिर भी साधारण रूप से सारी दैनिक क्रियाए पूर्ववत् ही सम्पन्न की। सायं प्रतिक्रमण के पश्चात् पुनः श्वास का प्रकोप बढ़ा। संतो ने बिछौना किया। आप लेट गए। लेटने से श्वास शांत नहीं हुआ तब पुनः विराज गए। संतों से कहा - ''आज से पहले कभी सोने पर श्वास नहीं फूला था।'' बस ये उनके अन्तिम शब्द थे। उसके पश्चात् तत्काल वे दिवंगत हो गये।

ऋषिराय के शासनकाल में दो सौ पैंतालीस दीक्षाएं हुई। उनमें सतहत्तर साधु और एक सौ अड़सठ साध्वियां थी।

प्रश्न :

१. ऋषिराय ने एक साथ कितने मील की यात्रा की थी ?
२. उन्होंने संघ में क्या सुधार किया था ?
३. 'कोई राजपूत है ?' - इस कथन का आशय क्या था ?
४. 'नखेद' का उन्होंने क्या अर्थ किया ?

११

आचार्य जीतमलजी

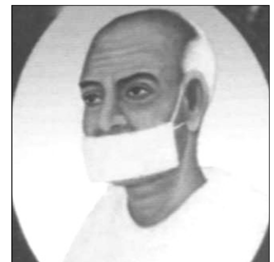

जन्म

आचार्य जीतमलजी (जयाचार्य) तेरापंथ धर्म-संघ के प्रतिभाशाली आचार्य थे। उनका जन्म जोधपुर डिविसन (मारवाड़) के रोयट गांव में वि.सं. १८६० की आश्विन शुक्ला १४ को हुआ था। उनके पिता का नाम आईदानजी तथा माता का नाम कल्लूजी था। वे ओसवाल जाति में 'गोलछा' गोत्र के थे। इनके दो बड़े भाई थे - सरूपचन्दजी और भीमराजजी। आचार्य भिक्षु एक बार रोयट पधारे थे तब से आईदानजी स्वामीजी के प्रति श्रद्धालु बन गए थे। वि.सं. १८४४ में जयाचार्य की बुआ अजबूजी ने स्वामीजी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली थी। स्वामीजी ने योग्यता देखकर कालांतर में उनका सिंघाड़ा कर दिया था।

रोगाक्रान्त

एक बार साध्वी अजबूजी विहार करती हुइ रोयट गांव पहुंची। उनका व्याख्यान प्रभावशाली होता था। अनेक लोग उनके व्याख्यान सुनने आया करते थे। कल्लूजी भी दर्शन करने आई। साध्वीजी ने कल्लूजी से कहा - ''तुम व्याख्यान क्यों नहीं सुनती ?'' कल्लूजी ने कहा - ''महाराज ! जीतमल बहुत बीमार है। हम लोग उसके जीने की

आशा छोड़ चुके हैं। निरन्तर आर्त्तध्यान रहता है। किसी काम में मन नहीं लगता। साध्वीजी बालक जीतमल को दर्शन देने गई। मंगल पाठ सुनाया और कहा - ''चिंता छोड़ो, मेरी एक बात सुनो। यदि बालक रोग-मुक्त होकर मुनि-दीक्षा ले तो तुम इसे रोकोगी नहीं - यह संकल्प लो।'' कल्लूजी ने कहा - ''महाराज ! इसके जीने की आशा क्षीण हो रही है और आप दीक्षा की बात कर रहे हैं।'' अजबूजी ने कहा - ''जीतमल जीवित रहे, तभी तुम्हारे संकल्प का उपयोग होगा।'' कल्लूजी ने वचन शिरोधार्य किया और संकल्प की घोषणा कर दी। संकल्प का चमत्कार हुआ। धीरे-धीरे बालक स्वस्थ होने लगा। लोगों ने कहा - यह संतों के भाग्य से जिया है।

अध्यात्म के अंकुर

जीतमल सात-आठ वर्ष की अवस्था में ही बुद्धिमान प्रतीत होता था। वह सबको बहुत प्रिय था। उसे धर्म बहुत अच्छा लगता था। उसकी प्रबल धार्मिक रुचि देख लोग पूछते - ''तू साधु बनेगा ?'' जीतमल कहता - ''जरूर बनूंगा।'' साधु कहते - ''तू अभी छोटा है साधु नहीं बन सकता।'' गांव में जब कभी साधु आते तो बालक पूछ बैठता - ''अब मैं साधु बन सकता हूं या नहीं ?'' साधु बनने की अज्ञात प्रेरणा, मात्र भावना में नहीं आचरण में भी उतर आई। एक दिन कपड़े की झोली में कटोरी रख बालक जीतमल अपने चाचा के घर गया। उसने कहा - ''मैं साधु बन गया हूं। मुझे शुद्ध आहार की भिक्षा दो।'' चाचा का परिवार इस बाल-लीला को देखकर आश्चर्यचकित हो गया।

दीक्षा

आचार्य भारमलजी जयपुर विराज रहे थे। उस समय जयाचार्य की माता कल्लूजी अपने तीनों पुत्रों को लेकर सेवा में उपस्थित हुई। सारा परिवार आचार्य भारमलजी के चरणों में हमेशा के लिए समर्पित

होने को उत्सुक था। सबसे पहले बड़े भाई सरूपचन्दजी ने दीक्षा का निवेदन किया। भारमलजी स्वामी ने योग्य समझ उन्हें दीक्षित कर लिया। बड़े भाई की दीक्षा देख बालक जीतमल का मन छटपटाने लगा। अवस्था छोटी, वैराग्य बड़ा। आचार्य श्री ने वैराग्य को महत्त्व दिया और माघ कृष्णा सप्तमी का दिन दीक्षा के लिए निश्चित कर दिया। बालक जीतमल को दीक्षा देने आचार्य श्री स्वयं न जाकर ऋषिराय को भेजा। ऋषिराय उस समय २२ वर्ष के मुनि थे। भारमलजी स्वामी ने कहा - 'मेरे पीछे भार संभालने के लिए तू है, तुझे भार संभालने वाला चाहिए, अतः तू ही जा।' वि.सं. १९६९ माघ कृष्णा ७ को ऋषिराय के हाथों बालक जीतमल का दीक्षा संस्कार सम्पन्न हुआ।

उसके एक महीने बाद उनकी माता कल्लूजी व बड़े भाई भीमराजजी ने भी भारमलजी स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। पूरा परिवार दीक्षित हो गया।

विद्या गुरु

भारमलजी स्वामी ने मुनि जीतमल को विद्याभ्यास के लिए मुनि हेमराजजी को सौंप दिया। भारमलजी स्वामी जैसे समर्थ आचार्य, ऋषिराय जैसे दीक्षा गुरु और हेमराजजी स्वामी जैसे विद्या गुरु को पाकर वे अपने-आपको धन्य अनुभव करने लगे। मुनि जीतमल ने विद्याभ्यास के साथ तप और जप का भी अभ्यास किया। एक बार १५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने पाली के चतुर्मास में बयालीस उपवास किए थे।

मुनि जीतमल अध्ययन की दिशा में निरन्तर आगे बढ़ रहे थे। हेमराजजी स्वामी के साथ वे १२ वर्ष तक रहे। बारह वर्ष में प्रवचन कला, तत्त्वचर्चा, आगमों के सूक्ष्म रहस्य सभी विषयों पर वे अपना प्रभूत्व स्थापित कर चुके थे।

गुरुभक्त

सं. १८८४ की घटना है। ऋषिराय मध्य-भारत की यात्रा कर रहे थे। मुनि जीतमल उनके साथ थे। वे झाबुआ के जंगल में से गुजर रहे थे। वह झाड़-झंकाड़ से भरा भयावना प्रदेश। कहा जाता है -

झाड़ी बंको झाबुओ, वचन बंको कुशलेश।
हाड़ा गामड़ बांकड़ा, नरबंको मरुधर देश।।

चलते-चलते देखा, एक भयावह आकृति आ रही थी। निकट आने पर देखा, सामने से रींछ आ रहा है। मुनि जीतमल तत्काल ऋषिराय के आगे आकर खड़े हो गए।

ऋषिराय ने कहा - ''हम चल ही रहे हैं, तुम आगे क्यों आये ? पीछे चलो।'' मुनि जीतमल ने कहा - 'यह नहीं हो सकता। आप संघ के आचार्य हैं। आपके शरीर की सुरक्षा करना हमारा धर्म है।' न ऋषिराय भयभीत थे और न मुनि जीतमल। दोनों अभय। अभय की रश्मियां चारों ओर फैलीं। रींछ का हृदय भी उससे अभिभूत हुआ, वह रास्ते को पार कर जंगल में चला गया।

संस्कारी कवि

आप संस्कारी कवि थे। काव्य-प्रतिभा आपकी जन्मजात सहचरी थी। ऐसी प्रतिभा को विरला ही व्यक्ति पा सकता है।

आप ११ वर्ष की अवस्था में ही कविता करने लग गए थे। १९ वर्ष की अवस्था में तो आपने जैनागम 'प्रज्ञापना' सूत्र का संक्षिप्त पद्यानुवाद कर दिया था। आपने भगवती सूत्र, जो वर्तमान आगमों में सबसे बड़ा आगम है की, पद्यमय टीका की। उसकी ८० हजार गाथाएं हैं आपकी समस्त रचनाओं का परिमाण साढ़े तीन लाख गाथाएं हैं। राजस्थानी साहित्यकारों में आपका प्रमुख स्थान है।

एकाग्रता

आपकी चित्तवृत्ति बड़ी एकाग्र थी। कार्य में संलग्न होने के

पश्चात् आस-पास का वातावरण आपके लिए बाधक नहीं बनता था।

हेमराजजी स्वामी एक बार पाली पधारे। वे बाजार की दुकानों पर ठहरे। जीतमल मुनि भी उनके साथ थे। उन्हीं दिनों वहां नट-मंडली आई हुई थी। बाजार में बांस रोपकर अपना खेल प्रारंभ किया। शहर के आबाल-वृद्ध उसे देखने जमा हो गए। मुनि जीतमल चौबारे में लिखना कर रहे थे। उधर उनके बिलकुल सामने नाटक प्रारंभ हुआ, इधर उनका लेखन-कार्य चलता रहा। नाटक की ओर उन्होंने आंख उठाकर भी नहीं देखा। एक व्यक्ति ने जो तेरापंथ का द्वेषी था बालक साधु को देखा तो सोचा, यदि एक बार भी वह साधु नाटक की ओर देख ले तो इसकी निंदा करने का थोड़ा मसाला मिल जाए। उसने अन्त तक ध्यान रखा, पर असफल। नाटक समाप्त हुआ। उस व्यक्ति ने कहा - 'जिस संस्था का एक बाल-साधु भी इतना एकाग्रचित्त और दृढ़ है उसकी जड़ कोई नहीं खोद सकता। इसलिए मैं कहता हूं कि तेरापंथ की जड़ को आगामी सौ वर्षों तक तो कोई हिला नहीं सकता।'

स्वाध्याय-प्रेमी

आपने अपने जीवन का बहुत-सा भाग स्वाध्याय में बिताया। अंतिम वर्षों में तो आप एक दिन में पांच-पांच हजार गाथाओं का स्वाध्याय किया करते थे। योगाभ्यास, ध्यान और एकान्तचिंतन आपके जीवन की प्रमुख प्रवृत्तियां थीं। मुनि मघराजजी को उत्तराधिकार देने के बाद आप प्रायः स्वाध्याय में ही संलग्न रहते थे। कोई व्यक्ति आपकी सेवा करने जाता तब आप कहते - मघजी के दर्शन किए या नहीं ? उनकी सेवा करो।

इस प्रकार आप अपना जीवन स्वाध्याय-पूर्ण बिताते।

महान् आचार्य

वि.सं. १८९४ में आप युवाचार्य बने। आप पन्द्रह वर्ष तक युवाचार्य रहे। आपने स्वतंत्र विहार कर अनेक जनपदों को प्रतिबुद्ध

किया। थली-प्रदेश में उनकी प्रेरणा से धर्म की व्यापक चेतना जागृत हुई। वि.सं. १९०८ बीदासर में आपने आचार्य पद को सुशोभित किया।

आप तेरापंथ के भाग्य-विधाता थे। इस संघ को समृद्ध और संगठित रखने के लिए आपने अनेक नई मर्यादाएं बांधीं। तेरापंथ संघ को तीन महोत्सवों - चरमोत्सव, पाटमहोत्सव तथा मर्यादा-महोत्सव की देन आपके मस्तिष्क की ही उपज है। आपने तेरापंथ शासन-संचालन की जो व्यवस्था की वह एक स्वतंत्र ग्रंथ का विषय है। आपकी बहुमुखी प्रतिभा ओर विशाल जीवन हमारे लिए प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेंगे।

वि. सं. १९३८, भाद्रपद कृष्णा द्वादशी जयपुर में आपका महाप्रयाण हुआ।

आपके शासनकाल में तीन सौ तीस दीक्षाएं हुई। उनमें सन्तों की १०४ व साध्वियों की २२६ दीक्षाएं हुई। आपके दिवंगत होने के समय ७१ साधु और २५० साध्वियां संघ में विद्यमान थे।

प्रश्न :

१. जयाचार्य का जन्म कौन-से गांव में हुआ था ?
२. जयाचार्य की दीक्षा किनके हाथों हुई ?
३. उनकी एकाग्रता की घटना क्या है ?
४. १९ वर्ष की अवस्था में कौन-से सूत्र का पद्यानुवाद किया था ?

१२

जैन पर्व

पर्व अतीत के प्रतीक होते हैं। जिस किसी तिथि को ऐतिहासिक मानकर उस पर उत्सव करना पर्व कहलाता है। जैनों के मुख्य पर्व चार हैं - अक्षय तृतीया, पर्युषण, महावीर जयन्ती और दीपावली।

१. अक्षय तृतीया (आखा तीज) - यह जैनों का ऐतिहासिक त्यौहार है। इस दिन जैनों के पहले तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने एक वर्ष चालीस दिन की तपस्या का पारणा किया था। भगवान् कर्मयुग को छोड़कर धर्मयुग की ओर मुड़े। उन्होंने साधुव्रत ग्रहण किया। लोग साधुओं का आचार-विचार कुछ नहीं जानते थे। भगवान् भिक्षा के लिए घर-घर गए, पर उन्हें आहार-पानी का संयोग नहीं मिला। क्योंकि लोग भिक्षा-विधि से अज्ञात थे।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। अभी तक न तो खाने को रोटी मिली, न पीने को जल मिला। भगवान् विहार करते-करते अपने पौत्र सोमप्रभ की राजधानी हस्तिनापुर (वर्तमान दिल्ली) में आ पहुंचे। वैसे ही वे घर-घर में भिक्षा के लिए गए। लोगों को बड़ा हर्ष हुआ। कोई हाथी, कोई घोड़े, कोई गहने और कोई कपड़े लाया। भगवान् ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। रोटी जैसी तुच्छ वस्तु भला जगत्-पिता को कौन भेंट करे ?

हस्तिनापुर के भव्य राज-प्रासाद में सम्राट् बाहुबलि का पौत्र श्रेयांस कुमार महल के झरोखे में बैठा था। रात को उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में उसने अपने हाथों से मेरु-पर्वत को अमृत से अभिषिक्त किया। वह इस अद्भुत स्वप्न के बारे में सोच रहा था। सहसा उसकी दृष्टि भगवान् ऋषभ पर पड़ी, जो उस समय राजमहल के निकट से गुजर रहे थे। भगवान् ऋषभ, कुमार श्रेयांस के संसार पक्षीय परदादा होते थे, पर वह उन्हें पहचान नहीं पाया। पूर्व भव में भी उसका भगवान् ऋषभ से निकट सम्बन्ध था। पूर्व भव के संस्कारों से स्वाभाविक स्नेह जागा। उसने ऊहापोह किया और उसे जाति-स्मृति ज्ञान (पूर्व जन्म का ज्ञान) हो गया। वस्तुस्थिति का ज्ञान होते ही राजकुमार नंगे पांव दौड़ा। भगवान् के चरणों में वन्दन किया और भिक्षा ग्रहण करने के लिए आग्रह करने लगा। भगवान् को दीक्षित होने के बाद आज तक भोजन नहीं मिला, यह जानकर कुमार श्रेयांस के मन में अत्यन्त पीड़ा हुई।

कुमार का अनुनय स्वीकार कर भगवान् राजमहल में पधारे। आगे क्या होता है- यह जानने के लिए लोग उत्सुक हो रहे थे। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का था। उस समय तृतीया का दिन आगामी कृषि का मुहूर्त्त करने के लिए शुभ माना जाता था। राजा को कृषि संबंधी विविध उपहार प्राप्त होते थे। उस दिन श्रेयांस कुमार के राजमहल में इक्षुरस की भेंट आई हुई थी। कुमार ने इधर-उधर देखा, भिक्षा के योग्य पदार्थ नहीं मिला। एक ओर इक्षु रस के घड़े रखे थे। मुनि के लिए कल्पनीय (ग्रहण करने योग्य) वस्तु वही थी। कुमार अपने हाथ से दान देने के लिए उद्यत हुआ। भगवान् के पास कोई पात्र नहीं था। उन्होंने दोनों हाथों की निश्छिद्र अंजलि मुंह पर टिका दी। कुमार का स्वप्न साकार हो रहा था। अत्यन्त मुदित मन से वह भगवान् को भिक्षा देने लगा। जितना आवश्यक था, उतना रस लेकर भगवान् ने अपना 'वर्षी तप' का पारणा किया। लोगों ने भगवान् के घर-घर

परिव्रजन का रहस्य समझा। उस दिन से तृतीया का महत्त्व और अधिक बढ़ गया और वह 'अक्षय-तृतीया' के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

भगवान् ऋषभ कर्मयुग और धर्मयुग के प्रवर्तक थे। उनकी तपःसाधना के प्रति लोगों में गहरी आस्था है। उनके अनुयायी श्रावक-श्राविकाएं सैकड़ों की संख्या में वर्षीतप करते हैं। भगवान् ऋषभ ने निरंतर एक साल से अधिक तपस्या की और वर्तमान में उसे एक साल तक एकान्तर तप (एक दिन के बाद एक दिन उपवास) के रूप में किया जा रहा है। इस तपस्या का समापन भी अत्यन्त उल्लासपूर्ण वातावरण में होता है। कुछ व्यक्ति इस दिन 'शत्रुञ्जय' आदि जैन तीर्थस्थलों में जाकर तपस्या पूरी करते हैं तो कुछ व्यक्ति अपने धर्माचार्यों की सन्निधि में इस क्रम को पूरा करते हैं।

२. **पर्युषण** - पर्युषण पर्व जैन धर्म का सबसे बड़ा धर्माराधना का पर्व है। यह पर्व आठ दिन तक मनाया जाता है। इसलिए इसको अष्टान्हिक पर्व भी कहते हैं।यह पर्व भाद्र कृष्णा त्रयोदशी से प्रारम्भ होता है और भाद्र-शुक्ला पंचमी को सम्पन्न होता है। इसमें तपस्या, स्वाध्याय, ध्यान आदि आत्मशोधन की प्रवृत्तियों की आराधना की जाती है। इस पर्व का अंतिम दिन संवत्सरी महापर्व कहलाता है। वर्ष भर की भूलों के लिए क्षमा लेना और क्षमा देना इसकी स्वयंभूत विशेषता है। यह पर्व मैत्री और उज्ज्वलता का संदेशवाहक है।

दिगम्बर परम्परा में यही पर्व भाद्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। इसमें प्रतिदिन क्षमा आदि दश धर्मों में से एक-एक धर्म की आराधना की जाती है। इसलिए इसे 'दशलक्षण पर्व' कहा जाता है।

३. **महावीर जयन्ती** - जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म चैत्र शुक्ला १३ को हुआ। जैन लोग उस दिन को जन्म-दिवस के रूप में उत्सवपूर्वक मनाते हैं। उस दिन अनेक प्रान्तीय

सरकारें व केन्द्रीय सरकार महावीर-जयन्ती का अवकाश भी रखती है।

४. दीपावली - इसका सम्बन्ध भगवान् महावीर के निर्वाण से है। कार्तिक कृष्णा अमावस्या को भगवान् का निर्वाण हुआ था। उस समय पावा में अनेक राजा भगवान् का चरमोत्सव मनाने आये हुए थे। उन्होंने घर-घर दीप जलाकर भगवान् का निर्वाण-दिवस मनाया था। आज उसी का अनुसरण करते हुए दीप जलाकर दीपमालिका मनाई जाती है।

प्रश्न :

१. भगवान् ऋषभदेव ने किसके हाथ से पारणा किया ?
२. अक्षय तृतीया कौन-से महीने में आती है ?
३. 'अक्षय-तृतीया' नाम क्यों हुआ ?
४. महावीर जयन्ती कौन-सी तिथि एवं किस महीने में आती है ?
५. दीपमालिका क्यों मनायी जाती है ?
६. पर्युषण-पर्व कितने दिन मनाया जाता है ?
७. पर्युषण-पर्व के अन्तिम दिन को क्या कहते हैं ?

१३

नौ तत्त्व

तत्त्व का अर्थ है - पदार्थ अथवा पदार्थ का स्वरूप। तत्त्व नौ हैं- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष।

१. **जीव** जिसमें चेतना-प्राण शक्ति हो, जानने व सुख-दुःख अनुभव करने की प्रवृत्ति हो और अपने सदृश सन्तति पैदा करने की क्षमता हो, वह जीव है।

२. **अजीव** जिसमें चेतना-प्राणशक्ति न हो। जानने व सुख-दुःख अनुभव करने की शक्ति न हो, वह अजीव है।

३. **पुण्य** आत्मा अपनी शुभ प्रवृत्ति के द्वारा जिन कर्म-पुद्गलों को ग्रहण करती है उन शुभ कर्म-पुद्गलों को पुण्य कहते हैं।

४. **पाप** आत्मा अपनी अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा जिन कर्म-पुद्गलों को ग्रहण करती है उन अशुभ कर्म-पुद्गलों को पाप करते हैं।

५. **आश्रव** कर्म ग्रहण करने वाले जीव के परिणाम को आश्रव कहते हैं।

६. **संवर** कर्म रोकने वाले जीव के परिणाम को संवर कहते हैं।

७. **निर्जरा** तपस्या के द्वारा कर्मों के नष्ट होने से जो आत्मा की उज्ज्वलता होती है, उसे निर्जरा कहते हैं।

८. **बन्ध** जीव के साथ शुभ-अशुभ कर्म-पुद्गलों का संबंध होना बन्ध कहलाता है।

९. **मोक्ष** समस्त कर्मों से छूट जाना - आत्मा को अपने रूप में स्थित हो जाना मोक्ष कहलाता है।

प्रश्न :

१. तत्त्व कितने हैं ? उनके नाम बताओ।

२. पुण्य का क्या अर्थ है ?

३. कर्म ग्रहण करने वाले जीव के परिणाम कौन-सा तत्त्व है ?

४. जीव और अजीव में क्या अन्तर है ?

१४

नौ तत्त्व : एक विश्लेषण

(नौ तत्त्वों पर एक रूपक)

जीव एक तालाब - रूप है। अजीव अ-तालाब-रूप है। पुण्य और पाप तालाब से निकलते हुए पानी के सामान है। आश्रव तालाब का नाला है। नाले को बंध कर देना संवर है। उलीच कर या मोरी के द्वारा पानी निकालना निर्जरा है। तालाब के अन्दर का पानी बन्ध है। खाली तालाब मोक्ष है।

१-२. **जीव-अजीव** ये दो तत्त्व हैं। बाकी के तत्त्व इनकी अवस्थाएं हैं। जीव और अजीव की अवस्थाएं बदलती रहती हैं। फिर भी उनके चैतन्य गुण और अचैतन्य गुण का विनाश नहीं होता, जैसे - सोने को तोड़-भांजकर उसके कड़े-कंगन आदि अनेक प्रकार के आभूषण बनाने पर भी उसका नाश नहीं होता, केवल उसके रूप बदलते हैं।

३-४. **पुण्य-पाप** पथ्य-अपथ्य भोजन के समान हैं। जैसे जीव के पथ्य भोजन की कमी और अपथ्य भोजन की अधिकता हो तब रोग बढ़ता है और

आरोग्य घटता है। जब अपथ्य भोजन कम हो, पथ्य भोजन अधिक हो, तब आरोग्य बढ़ता है और रोग घटता है। पथ्य-अपथ्य दोनों प्रकार के भोजन के बिना मृत्यु हो जाती है। ठीक इसी प्रकार जब जीव के पुण्य कम हों, पाप अधिक हों, तब सुख घटता है और दुःख बढ़ता है। जब पुण्य अधिक हों, पाप कम हों तब सुख बढ़ता है और दुःख घटता है। पुण्य-पाप के छूटने से मुक्ति होती है।

५. आश्रव - (क) जैसे तालाब का नाला, मकान के द्वार और नौका के छेद होता है, वैसे जीव के आश्रव होता है।

(ख) जैसे तालाब और नाला, मकान और द्वार, नौका और छेद एक हैं, वैसे जीव और आश्रव एक हैं।

(ग) जिसके द्वारा पानी आये वह नाला है, जिसके द्वारा मनुष्य आये वह द्वार है, जिसके द्वारा पानी आये वह छेद है, वैसे ही जिसके द्वारा कर्म आये वह आश्रव है।

(घ) जैसे पानी और नाला, मनुष्य और द्वार, पानी और छेद दो हैं, वैसे ही कर्म और आश्रव दो हैं।

(ङ) जिसके द्वारा पानी आये वह नाला है, किन्तु पानी नाला नहीं। जिसके द्वारा मनुष्य आये वह द्वार है, किन्तु मनुष्य द्वार नहीं। जिसके द्वारा पानी आये वह छेद है, किन्तु

पानी छेद नहीं। वैसे ही जिसके द्वारा कर्म आये वह आश्रव है, किन्तु कर्म आश्रव नहीं।

६. **संवर** - जैसे तालाब का नाला रोके, मकान का द्वार रोके और नौका का छेद रोके, वैसे जीव के आश्रव को रोकना संवर है।

७. **निर्जरा** - जैसे तालाब का पानी मोरी से निकाला जाता है, मकान का कूड़ा-कर्कट द्वार से बाहर किया जाता है, नौका का पानी उलीच-उलीच कर निकाला जाता है, वैसे ही शुभ प्रवृत्ति के द्वारा कर्मों को अलग कर आत्मा को उज्ज्वल बनाना निर्जरा है।

८. **बन्ध** - जैसे तैल और तिल, घी और दूध, धातु और मिट्टी आपस में मिले हुए हैं, वैसे ही जीव और कर्म का आपस में मिलना बन्ध है।

९. **मोक्ष** - जैसे कोल्हू आदि के द्वारा तैल खल-रहित होता है, मथनी आदि के द्वारा घी छाछ-रहित होता है, अग्नि आदि के द्वारा धातु मिट्टी-रहित होती है, वैसे ही संयम के द्वारा जीव का सर्वदा कर्म-रहित होना मोक्ष है।

('तेरह द्वार' से अनूदित)

प्रश्न :

१. आश्रव को किस उपमा से बताया गया है ?

२. बन्ध किसे कहते हैं ?

३. आश्रव और जीव एक है या दो ?

१५

छः द्रव्य

जिसमें गुण और पर्याय दोनों होते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं। गुण का अर्थ है - सदा साथ में रहने वाला धर्म और पर्याय का अर्थ है – बदलने वाला धर्म। जैसे – जीव का गुण है ज्ञान और पर्याय है सुख-दुख आदि।

द्रव्य छह हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्‌गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। अस्ति का अर्थ है– प्रदेश और काय का अर्थ है – समूह। प्रदेश-समूह को अस्तिकाय कहते हैं। काल-एक समय मात्र का होता है, उसके प्रदेश नहीं होता। इसलिए इसको अस्तिकाय नहीं कहा जाता।

१. धर्मास्तिकाय

जीव और पुद्‌गल दोनों गतिशील हैं। उनकी गति में जो उदासीन भाव से सहयोग देता है उस द्रव्य को धर्मास्तिकाय कहते हैं। यह द्रव्य जीव और पुद्‌गल को गति नहीं कराता, किन्तु जो गति करते हैं उनमें सहायक होता है, जैसे - पानी मछली को तैराता नहीं, किन्तु उसके तैरने में सहयोगी बनता है। हम अंगुली हिलाते हैं, शरीर में रक्त का संचार होता है, यह सब इसी द्रव्य के माध्यम से होता है।

२. अधर्मास्तिकाय

जो जीव और पुद्‌गल को ठहरने में सहयोग देता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं। चिलचिलाती धूप में पथिक जा रहा है। आम्र वृक्ष की छाया देखकर वह बैठ जाता है, ठहर जाता है। छाया पथिक

के ठहरने में सहयोगी बनी, उसी प्रकार यह द्रव्य ठहरने में सहयोगी बनता है।

३. आकाशास्तिकाय

जो जीव और पुद्‌गल को रहने के लिए स्थान देता है उसे आकाश कहते हैं। वह दो प्रकार का है - लोकाकाश और अलोकाकाश। जहां छहों द्रव्य होते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं, और जहां मात्र आकाश ही हो उसे अलोकाकाश कहते हैं।

४. काल

जो रात-दिन का निमित्त है, जो वस्तुओं की पर्यायों के बदलने का हेतु है, उसे काल कहते हैं। समय, मिनट, घड़ी, दिन, रात आदि को व्यवहार में काल कहा जाता है।

५. पुद्‌गलास्तिकाय

जो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श युक्त होता है वह पुद्‌गलास्तिकाय है। पुद्‌गलास्तिकाय का स्वभाव 'परिवर्तन' होना है। हम पदार्थ में जो परिवर्तन देखते हैं वह पुद्‌गलास्तिकाय का ही स्वभाव है।

६. जीवास्तिकाय

जो चेतनावान है, ज्ञानवान है, जो जानता है, देखता है, वह जीवास्तिकाय है।

ये छहों द्रव्य लोक में पाए जाते हैं। अलोक में केवल एक आकाशास्तिकाय ही पाया जाता है, क्योंकि वहां गति और स्थिति के माध्यम द्रव्य नहीं हैं।

प्रश्न :

१. छह द्रव्यों के नाम बताओ।
२. ठहरने में सहयोग देने वाला कौन-सा द्रव्य है ?
३. क्या अलोकाकाश में जीव पाये जाते हैं ?
४. अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

१६

द्रव्य कहां है ?

देवेन्द्र - राजेन्द्र ! क्या तुम बता सकोगे, मेरी मुट्ठी में क्या है?

राजेन्द्र - हां देवेन्द्र ! यह क्या कठिन बात है ? तुम्हारी मुट्ठी में पांच रुपये हैं।

देवेन्द्र - इनके सिवाय क्या कुछ और भी है ?

राजेन्द्र - और तो क्या हो सकता है ? हां, एक आकाश और है।

देवेन्द्र - आकाश कैसे ?

राजेन्द्र - आकाश तो सब जगह (लोक और अलोक में) फैला हुआ है, वह समूची दुनिया का आश्रय-स्थल है।

देवेन्द्र - फिर सोचो, आकाश के अतिरिक्त और कुछ भी है या नहीं ?

राजेन्द्र - और क्या ? पुद्‌गल ! रुपये पुद्‌गलों के बने हुए हैं, तेरा हाथ भी तो पुद्‌गलों का ही बना हुआ है।

देवेन्द्र - यह तो दीखता ही है, इसके अलावा जो कुछ है वह बताओ।

राजेन्द्र - ठहरो। जरा सोच लूं। (थोड़ी देर सोच कर) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय भी क्यों नहीं

होंगे ? वे भी तो सम्पूर्ण लोक में एक साथ फैले हुए हैं, जिनके सहारे हम चलते और ठहरते हैं। और एक काल भी होगा क्योंकि मनुष्य-क्षेत्र में वह भी तो सब जगह बरत रहा (विद्यमान) है।

देवेन्द्र - ठीक है, जरा आगे बढ़ोगे तो कुछ न कुछ और भी पाओगे।

राजेन्द्र - अब और क्या बाकी रहा होगा ?

देवेन्द्र - कुछ न कुछ और भी।

राजेन्द्र - मुझे तो कुछ भी पता नहीं चला। अगर तुमको मालूम हो तो बताओ।

देवेन्द्र - तुम्हारा जीव कहां है ?

राजेन्द्र - समूचे शरीर में फैला हुआ है।

देवेन्द्र - तो फिर तुम्हारे हाथ में भी क्यों न होगा ?

राजेन्द्र - तब तो एक मुट्ठी में - धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्‌गल और जीव सभी द्रव्य हैं।

देवेन्द्र - हां राजेन्द्र ! ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां ये छहों द्रव्य न हों।

प्रश्न :

१. आकाश कहां फैला हुआ है ?

२. सामने बिजली का लट्टू जल रहा है, बताओ उसमें कौन-कौन से द्रव्य हैं?

३. हम किसके सहारे चलते हैं ?

४. तुम किसके सहारे ठहरते हो ?

१७

रूपी - अरूपी

शिक्षक - रमेश ! ऊपर क्या देख रहे हो ?

रमेश - आकाश देख रहा हूं, गुरुजी !

शिक्षक - क्या आकाश को भी देख सकते हो ?

रमेश - हां गुरुजी ! देखो, यह नीला-नीला दीख रहा है न?

शिक्षक - रमेश ! बताओ, क्या आकाश ऊपर ही है, नीचे नहीं?

रमेश - क्यों नहीं ? वह सर्वत्र एक-सा फैला हुआ है। उसके बिना तो एक सूई की नोक भी नहीं टिक सकती।

शिक्षक - तो फिर तुम्हारी अंगुली के आस-पास भी वह होगा?

रमेश - हां जरूर, वह तो है ही।

शिक्षक - क्या तुम्हें यह दीख रहा है ?

रमेश - नहीं, यह दीख नहीं रहा है। इसका क्या कारण है गुरुजी ? आप ही बताइए, ऊपर का आकाश तो दिख रहा है और यहां नहीं दीखता है।

शिक्षक - रमेश ! तुम भूल रहे हो। यह जो नीला-नीला दीख रहा है, यह आकाश नहीं है। ये तो रज-कण इकट्ठे

हो रहे हैं, और दूरी के कारण नीले-नीले से जान पड़ते हैं।

रमेश - तो क्या हमको आकाश दिख नहीं सकता ?

शिक्षक - नहीं, क्योंकि हम उन्हीं वस्तुओं को देख सकते हैं, जिनमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं। आकाश में ये नहीं है। रमेश ! याद रखो, जिसमें ये चारों गुण विद्यमान रहते हैं, उन वस्तुओं को रूपी कहते हैं। आकाश अरूपी है।

रमेश - गुरुजी ! क्या हम सभी रूपी चीजों को देख सकते हैं?

शिक्षक - नहीं, परमाणु या सूक्ष्म स्कंध रूपी होते हुए भी नहीं दिखते। जो रूपी हों, वे सारे के सारे दिखें, यह नियम नहीं, किन्तु जो दिखते हैं, वे सब रूपी हैं।

रमेश - क्यों इसका क्या कारण है ?

शिक्षक - हमारे देखने की शक्ति सीमित है। इसलिए हम सभी रूपी चीजें नहीं देख पाते।

रमेश - आंखों से तो नहीं, परन्तु अपने पास बहुत से यन्त्र हैं, उनके द्वारा तो देख सकते हैं ?

शिक्षक - नहीं, कई रूपी चीजें बहुत सूक्ष्म होती है, जो अणुवीक्ष्ण के द्वारा भी नहीं देखी जा सकती।

रमेश - आज के वैज्ञानिक अणुवीक्ष्ण के द्वारा परमाणु को देखते हैं तब क्या वे वस्तुएं उससे भी छोटी हैं?

शिक्षक - नहीं, परमाणु से छोटी कोई चीज नहीं होती, किंतु वैज्ञानिक जिसे परमाणु कहते हैं वह सचमुच परमाणु नहीं, क्योंकि उसे तोड़ा जा सकता है।

रमेश - तो क्या वह परमाणु नहीं ?

शिक्षक - हां ! वास्तविक परमाणु नहीं। वह अत्यन्त छोटा स्कन्ध (परमाणु-समूह) है। इसलिए उसे व्यवहार में परमाणु कह सकते हैं।

रमेश - रूपी वस्तुएं कौन-कौन-सी हैं ?

शिक्षक - पुद्गलों से बनी हुई जितनी भी चीजें हैं, वे सब रूपी हैं।

रमेश - इसका मतलब तो यह हुआ कि पुद्गल-द्रव्य के सिवाय बाकी के सब द्रव्य अरूपी हैं, क्योंकि वर्ण, गंध, रस, स्पर्श तो पुद्गल के अतिरिक्त किसी में भी नहीं होते।

शिक्षक - हां, बिल्कुल ठीक है। छह द्रव्यों में सिर्फ पुद्गल ही रूपी है। और शेष सब अरूपी हैं।

प्रश्न :

१. ऊपर जो नीला-नीला-सा दीखता है, वह क्या है ?

२. तुम किस चीज को देख सकते हो ?

३. क्या धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय रूपी हैं ?

४. छह द्रव्यों में अरूपी द्रव्य कितने हैं ?

५. क्या आकाश के बिना कोई चीज रह सकती है ?

१८

धर्म की पहचान

प्रश्न - धर्म रुपयों-पैसों से खरीदा जा सकता है या नहीं ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि वह त्याग, तपस्या आदि शुद्ध आचरण से ही होता है। वह कहीं बाहर से नहीं आता। कहा भी है -

धर्म न बाड़ी नीपजै, धर्म न हाट बिकाय।
धर्म शरीरां नीपजै, जो कुछ कीन्हो जाय॥

प्रश्न - क्या धर्म भी जबरदस्ती कराया जा सकता है ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि धर्म समझा-बुझाकर ही कराया जा सकता है।

प्रश्न - धर्म दया में है या हिंसा में ?

उत्तर - दया में।

प्रश्न - धर्म त्याग में है या भोग में ?

उत्तर - त्याग में।

प्रश्न - बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों की हिंसा करना धर्म है या नहीं ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि हिंसा में कभी धर्म नहीं होता।

प्रश्न - जहां राग, द्वेष और स्वार्थ की प्रवृत्ति होती है, वहां धर्म होता है या नहीं ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि राग-द्वेष हिंसा के कारण हैं, इसलिए इनकी प्रवृत्ति में धर्म नहीं होता।

प्रश्न - देव, गुरु, धर्म के लिए हिंसा करना धर्म या नहीं ?

उत्तर - नहीं, क्योंकि हिंसा हिंसा है, अधर्म है, भले फिर वह किसी के लिए भी क्यों न की जाए।

प्रश्न - अन्य मतानुयायी अहिंसा, संतोष, ब्रह्मचर्य-पालन, तपस्या आदि करते हैं, वह धर्म है या नहीं ?

उत्तर - है, क्योंकि धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं, उसका द्वार सबके लिए खुला है।

प्रश्न - क्या पद-दलित, शूद्र और म्लेच्छ भी धर्म करने के लिए अधिकारी हैं ?

उत्तर - क्यों नहीं, उनमें भी चेतना है। भगवान् महावीर ने धर्म करने का अधिकार मानव मात्र को दिया। धर्म करने का सम्बन्ध किसी जाति व लिंग से नहीं, वह तो अपनी आत्मा से है।

प्रश्न - धर्म क्या है ?

उत्तर - 'आत्मशुद्धि साधनं धर्मः' - जिन उपायों से आत्म-शुद्धि हो सके, उनको धर्म कहते हैं।

प्रश्न - वे उपाय कौन-कौन-से हैं ?

उत्तर - संवर और निर्जरा, अर्थात् त्याग और तपस्या। इनके अनेक भेद हैं। जैसे - क्रोध नहीं करना, अहंकार नहीं करना, अणुव्रतों का आचरण करना आदि।

प्रश्न - क्या लौकिक धर्म और लोकोत्तर धर्म एक हैं ?

उत्तर - नहीं दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्न - उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर - लौकिक धर्म है - सामाजिक कर्तव्यों और लोक-व्यवहार का पालन।
लोकोत्तर धर्म है - कर्म-बन्धन से छूटने का प्रयत्न आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न।

प्रश्न :

१. जहां राग-द्वेष की प्रवृत्ति होती है, वहां धर्म होता है या नहीं ?
२. क्या देव, गुरु, धर्म के लिए हिंसा करना धर्म है ?
३. क्या शूद्र, म्लेच्छ आदि लोगों को धर्म करने का अधिकार नहीं है?
४. धर्म का लक्षण क्या है ?

१६

धर्म-स्थान

कमल हर रोज धर्म स्थल - साधुओं के स्थान पर जाया करता था। एक दिन उसके पिता ने सोचा कि यह दिन में दो-चार बार साधुओं के यहां जाता है तो कुछ समझकर भी आता है या यों ही चक्कर काटता है, मुझे इसकी निगाह करनी चाहिए। दोपहर के समय पिता और पुत्र बैठे हुए थे। कमल की आंख बार-बार सामने दीवाल पर लटकती हुई घड़ी की सूई पर टिकती थी। पिता ने कहा -

'कमल ! क्या कहीं जाने वाले हो ?

'हां पिताजी ! साधुओं की सेवा में जाने का समय होने वाला है।'

पिता ने कहा - 'तुम वहां बार-बार किसलिए जाते हो ?'

पुत्र - 'पिताजी ! वहां जाने का उद्देश्य क्या आपसे छिपा है ? वहां वे ही जाते हैं, जिन्हें कुछ न कुछ आत्मज्ञान पाना है। वहां जितना जाऊं, उतना ही थोड़ा है। आत्मा एक ऐसा गूढ़ तत्त्व है, जिसका सहज पता तक नहीं चलता। उसके असली स्वरूप तक पहुंचने में अभी न जाने कितने-कितने प्रयास करने होंगे।'

पिता - 'वहां जाकर तुम लोग कुछ इधर-उधर की बातें भी करते होगे ?

पुत्र - 'नहीं पिताजी ! मैं और मेरे साथी वहां जिस उद्देश्य से

जाते हैं, उसी उद्देश्य को सफल करने में लग जाते हैं, हम एक क्षण भी विफल नहीं करते। हम अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतों के प्रत्येक पहलू को तर्क की कसौटी पर समझने का प्रयास करते हैं, साधुओं से पूछताछ करते हैं और उनको जीवन में उतारने का क्रम सोचते हैं। वह स्थान हमारे लिए जिज्ञासा का घर है।

उस शान्त वातावरण में जाते ही हमारे सामने ये प्रश्न नाच उठते हैं कि हम कौन हैं ? कहां से आये हैं? और कहां जाएंगे ? निजी चीज क्या है ? हम किस ओर जा रहे हैं ? हमारा लक्ष्य क्या होना चाहिए ? हम अपने आपको क्यों नहीं पहचानते ? अपना स्वरूप जानने में कौन बाधा डाल रहा है ? प्राणी-मात्र में इतना अन्तर कैसे है ? आदि-आदि ऐसे प्रश्न हमारे सामने हैं, जिनको सुलझाने के लिए हमें समूचा जीवन लगाने की आवश्यकता है। पिताजी ! हम वहां निठल्ले नहीं रहते। हम इनका अभ्यास करते हैं और भगवान् महावीर की वाणी ''समयं गोयम! मा पमायए'' - गौतम ! क्षण-मात्र का भी प्रमाद मत करो, में जो शिक्षा मिली है, उस पर हम पूर्णतया अमल करते हैं।'

अपने प्रिय पुत्र की तत्त्व भरी बातें सुनकर पिता अवाक्-सा रह गया और प्रसन्नता से बोला - 'अच्छा बेटा ! साधु-साध्वियों के पास खूब जाया करो और इसी तरह समय को सफल बनाते हुए साधु-सेवा का लाभ उठाया करो।'

प्रश्न :

१. धर्म स्थान में जाने का उद्देश्य क्या है ?

२. धर्म-स्थान में जाने पर दिल में क्या-क्या प्रश्न उठते हैं ?

३. वहां पर क्या-क्या करना चाहिए ?

२०

आशातना

विमल और निर्मल दोनों भाई साधुओं के दर्शन करने गये। विमल धर्म की असलियत को पहचानता था। निर्मल अभी तक सात वर्ष का ही था। आगे एक कमरे के दरवाजे पर एक रजोहरण (ओघा) रखा हुआ था। निर्मल उसे लांघकर आगे जाने लगा, इतने में विमल बोला - 'निर्मल ! ठहरो, आगे मत जाओ।'

निर्मल - क्यों ?

विमल - रजोहरण साधुओं का है और यहां पर रुकावट के लिए रखा गया है। इसको लांघने से आशातना लगती है।

निर्मल - आशातना किसे कहते हैं ?

विमल - गुरुओं के प्रति अनुचित बर्ताव करने का नाम आशातना है।

निर्मल - तो क्या अन्दर जाना अनुचित है ?

विमल - नहीं, इसको लांघकर जाना अनुचित है।

निर्मल - इसके सिवाय और भी आशातनाएं होती होंगी।

विमल - हां, बहुत हैं।

निर्मल - कौन-कौन-सी हैं ? मुझे बताओ।

विमल - साधुओं की ओर पीठ करके बैठना, चिपककर

बैठना, बराबर बैठना, इसी तरह सटकर खड़ा रहना, बिना पूछे बीच में बोलना, व्याख्यान के बीच में बोलना, व्याख्यान के बीच में उठकर चले जाना आदि अनेक आशातनाएं हैं। अरे भाई ! मैं कितनी गिनाऊं ? ये तो स्वयं ध्यान रखने की बातें हैं। जैसे देखो, हम वन्दना करते हैं तब साधुओं के चरणों को छूते हैं, पर उनपर हाथों की घसीट-सी लगा डालते हैं। यह भी आशातना है।

निर्मल - आशातना क्यों नहीं करनी चाहिए ?

विमल - आशातना करने से पाप-कर्म का बन्धन होता है, देखने में भी बुरा मालूम होता है और यह अशिष्टता भी है।

निर्मल - ठीक है, परन्तु अगर किसी समय आशातना हो जाये तो क्या करना चाहिए ?

विमल - अगर आशातना हो जाये तो विनीत भाव से क्षमा मांग लेनी चाहिए।

प्रश्न :

१. निर्मल जब रजोहरण को लांघकर आगे जाने लगा तो विमल ने उसे क्यों रोका ?

२. आशातना किसे कहते हैं ?

३. आशातना क्यों नहीं करनी चाहिए ?

४. यदि आशातना हो जाये तो क्या करना चाहिए ?

२१

तेरापंथ की मर्यादाएं

राजेन्द्र - देवेन्द्र ! आज का वातावरण कितना कलुषित हो रहा है। घर-घर में कलह, बड़ों की अवज्ञा, आपस में दूषित बर्ताव, आपसी भेदभाव आदि-आदि बातें कितनी मजबूत हो चुकी हैं। गृहस्थ-समाज की ही क्या, कुछेक साधु-समाजों की भी यही दशा है। जिन्होंने पौद्गलिक सुख, पूजा-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान को ठुकरा कर एक मात्र आत्म-साधना के लक्ष्य से ही दीक्षा ली है, आश्चर्य है वे भी कलह के शिकंजे में फंसे हुए हैं। ऐसा क्यों हो रहा है देवेन्द्र ?

देवेन्द्र - राजेन्द्र ! इसका असली कारण अव्यवस्था या दुर्व्यवस्था एवं अनुशासन की कमी है। जिस समाज में अच्छी व्यवस्था है, कुशल अनुशासन है वह आज भी इस वातावरण से कोसों दूर है।

तेरापंथ धर्म-संघ की बातें सुनकर तुम्हें आश्चर्य होता। मैं करीब ४-५ वर्षों से उनके सम्पर्क में आया हूं। उनका संगठन, पारस्परिक विशुद्ध प्रेम, कुशल अनुशासन, बड़ों का सम्मान, सब में भाई-चारे का बर्ताव आदि-आदि विलक्षण बातों की मुझपर गहरी छाप पड़ी है। उसकी प्रत्येक व्यवस्था ने मुझे मन्त्र-मुग्ध बना दिया है। उसके दूरदर्शी

पूर्वाचार्यों की रची हुई मर्यादाएं विलक्षण हैं। सुनो! मैं तुम्हें कुछ खास-खास मर्यादाएं बताता हूं।

उन मर्यादाओं में गण को बड़ा महत्त्व दिया गया है। गण को सुव्यवस्थित रखने के लिए एक आचार्य होते हैं। उनकी कुशल देख-रेख में ही समूचे गण का संचालन होता है। आचार्य गण में से ही चुने जाते हैं। आचार्य का निर्वाचन पूर्ववर्ती आचार्य ही करते हैं। आचार्य इस काम को अपने जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अपने कौशल की कसौटी मानते हैं।

प्रत्येक साधु-साध्वी एवं विशेषकर आचार्य गण के प्रति पूर्ण जिम्मेदार होते हैं। आचार्य का आदेश बिना किसी हिचकिचाहट के मान्य होता है। साधु-साध्वियों का रहना, विहार करना, देश-विदेश में धर्म-प्रचार करना आदि सब आचार्य के आदेशानुसार होते हैं। रोगी साधुओं की सेवा करना, व्यवस्था-भंग करने वाले को दंड देना, किसी को संघ से अलग करना, आदि-आदि कार्य आचार्य के द्वारा संपादित होते हैं।

दीक्षित करने के अधिकारी एक मात्र आचार्य ही होते हैं। आचार्य की अनुमति के बिना कोई किसी को दीक्षा नहीं दे सकता। शिष्य भी सब एक आचार्य के होते हैं।

कोई भी साधु या साध्वी गण के किसी भी सदस्य की उतरती बात नहीं कर सकता। अगर कोई किसी में गलती देखे तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह उसको सावधान कर दे और न माने तब आचार्य को उसकी सूचना दे दे, किन्तु इसके विपरीत यदि वह और किसी को कहता है तो स्वयं दोषी ठहर जाता है और यह समझा जाता है कि वह उस साधु से दूसरों के मन फांटना चाहता है।

साधुओं की दैनिक चर्या प्रायः निर्धारित होती है। भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन का समान विभाग होता है। उनके जीवन का प्रत्येक पहलू

मर्यादाओं की अटूट श्रृंखला से बंधा हुआ है। ये नियम उन्होंने अपनी इच्छा से स्वीकार किये हैं। ये थोपे हुए नियम नहीं हैं। संघ को सुव्यवस्थित रखने के लिए आचार्य समय-समय पर नियम बनाते हैं। सभी सदस्य उन्हें सहर्ष स्वीकार करते हैं। संघ और संघपति के प्रति निष्ठा के कारण ही आज तेरापंथ धर्मसंघ की एकता बनी हुई है। यही धर्मसंघ की प्रतिष्ठा और प्राण है।

प्रश्न :

१. तेरापन्थ का संचालन कौन करता है ?

२. आचार्य का निर्वाचन कौन करता है ?

३. गण के प्रति किनका उत्तरदायित्व होता है ?

४. आचार्य के मुख्य-मुख्य कार्य बताओ।

५. क्या आचार्य की अनुमति के बिना कोई दीक्षा दे सकता है ?

६. किसी में त्रुटि देखी जाए तो क्या करना चाहिए ?

२२

क्षमा-याचना

सोहन - पिताजी ! कल मैं आचार्यश्री की सेवा में बैठा था। लगभग एक घण्टा रात होते ही श्रावकों के जत्थे के जत्थे घण्टों तक कतार-सी बांधे इधर-उधर घूमते रहे। उनमें कई तो सिर झुकाते और कई याचना करते थे। यह क्या था पिताजी ?

पिता - सोहन ! कल खमतखामणा का दिन था।

सोहन - खमतखामणा क्या है पिताजी ?

पिता - आपस में कोई बोल-चाल, मन-मुटाव, वैर-विरोध या अनुचित बर्ताव हो जाये तो उसके लिए निर्मल मन से क्षमा मांगने और दूसरों को क्षमा देने को 'खमतखामणा' कहते हैं।

सोहन - क्या कल एक साथ ही सबके बीच मन-मुटाव हो गया था ?

पिता - नहीं, कल पक्ष का अन्तिम दिन था। इसे 'पक्खी' कहते हैं।

सोहन - पक्खी का इतना महत्व क्यों है ?

पिता - बेटा सामान्य बात तो यह है कि जब किसी के साथ गलत बर्ताव हो जाए तो उसी वक्त उससे क्षमा मांग

लेनी चाहिए। साधारणतया आपसी बर्ताव में, भूल-चूक से गलतियां हो जाती हैं। उनकी विशुद्धि के लिये पन्द्रह दिनों में जो क्षमा-याचना करते हैं, उस दिन का नाम 'पक्खी' है। कल चैत्र शुक्ला पूर्णिमा थी। वह पक्ष का अन्तिम दिन था। इसलिए सब खमतखामणा कर रहे थे। इस तरह चार महीनों के बाद जो पक्खी आती है, वह 'चौमासी पक्खी' कहलाती है। संवत्सरी का दिन क्षमाचायना का सबसे बड़ा दिन है, उस दिन समूचे वर्ष का सिंहावलोकन किया जाता है।

सोहन - पिताजी ! अगर कोई खमतखामणा न करे तो क्या होगा?

पिता - सोहन ! खमतखामणा न करने से बड़ी हानि होती है। संवत्सरी के दिन भी कोई खमतखामणा न करे तो उसका सम्यक्त्व चला जाता है, इससे बढ़कर आत्मा का क्या अहित हो सकता है ? बेटा ! खमतखामणा न करने से मन में वैर-विरोध की गांठें बंध जाती हैं। जब तक वे नहीं खुलतीं तब तक व्यक्ति का मन बेचैन रहता है। उसमें शत्रुता का भाव बढ़ता जाता है।

सोहन - पिताजी ! कृपाकर बताइये कि 'खमतखामणा' कैसे करना चाहिए।

पिता - जिनसे वैर-विरोध है, वे अगर सामने हों तो उनसे प्रत्यक्ष रूप से हाथ जोड़ कर क्षमा मांग लेनी चाहिए और यदि सामने न हों तो मन ही मन उनको याद कर, मन से विरोध भाव को हटा कर क्षमा-याचना कर लेनी चाहिए।

सोहन - पिताजी ! यह बहुत ही अच्छा काम है। इससे हम

सबको बहुत ही लाभ पहुंच सकता है। परस्पर हमारी मित्रता बढ़ती है और हम एक दूसरे के निकट आ जाते हैं।

पिता - बेटा ! मैं तुम्हें एक पद सिखाता हूं। इसे तुम सुबह और शाम दोनों वक्त बोल लिया करो।

सोहन - बताइए, वह कौन-सा पद है ?

पिता - सुनो :

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई।

अर्थात् मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं। वे सब मुझे क्षमा करें। मैं सबका मित्र हूं, किसी से भी मेरा वैर-विरोध नहीं है।

बेटा ! देखो खमतखामणा कितनी अच्छी चीज है। क्षमा मांगनेवाला अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगता है और क्षमा करनेवाला उसकी गलतियों को माफ करता है। क्षमा मांगना भी बड़प्पन है और क्षमा देना भी बड़प्पन है।

सोहन - हां पिताजी ! आज मैं जान सका कि खमतखामणा वैर-विरोध को मिटाने और मित्रता बढ़ाने तथा अपने मन को विशुद्ध रखने का महान उपक्रम है।

प्रश्न :

१. खमतखामणा का अर्थ बताओ।
२. खमतखामणा कैसे करना चाहिए ?
३. 'खामेमि सव्वजीवे' का अर्थ बताओ।
४. संवत्सरी के दिन खमतखामणा न करने से क्या होता है ?
५. इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है।

२३

मृत्युञ्जयी थावच्चापुत्र

थावच्चापुत्र एक दिन अपनी अट्टालिका पर खड़ा था। उसके कान में मधुर-मधुर गीत सुनाई दिए। वह उन्हें सुनता गया। उसे बड़ा अच्छा लगा। पर वह जान न सका कि गीत का भावार्थ क्या है और कहां से वह मधुर स्वर-लहरी आ रही है। वह अपनी माता के पास आया और सरलता से पूछने लगा, मां ! ये गीत कहां गाए जा रहे हैं ?

मां ने कहा - 'बेटा ! पड़ौसी के घर पुत्र का जन्म हुआ है। उसकी खुशी में ये गीत गाए जा रहे हैं।

'अच्छा। पुत्र उत्पन्न होने पर इतनी खुशी होती है ?

'हां बेटा ! माता ने कहा।

'तो क्या मैं पैदा हुआ था तब भी इसी तरह गीत गाए गए थे ? थावच्चापुत्र अपने बचपन के स्वाभाविक भोलेपन के साथ पूछ बैठा।

माता ने कहा - 'वत्स ! जब तुम्हारा जन्म हुआ था तब एक दिन ही नहीं कई दिन तक इससे भी ज्यादा अच्छे गीत गाए गए थे। खुशियां मनाई गई थी।'

'मां ! मेरे कान उन गीतों को सुनने के लिए लालायित हैं।

वह भागा, पुनः छत पर आया। ध्यान से गीत सुनने लगा। पर अब उन गीतों में वह मधुरता नहीं थी। कान उन्हें सुनना नहीं चाहते थे।

वह असमंजस में पड़ गया। क्या बात है ? वे गीत तो अब नहीं हैं या गाने वाले दूसरे हैं। कुछ समझ में नहीं आया। वह पुनः दौड़ा-दौड़ा माता के पास आया और पूछने लगा -

'मां ! गीतों में इतना अन्तर क्यों हो गया है ? उनकी मधुरता क्यों नष्ट हो गई ? ये गीत तो कानों को बड़े अप्रिय लगने लगे हैं।' पुत्र की यह बात सुनकर माता की आंखों में आंसू आ गए। वह बोली - 'बेटा ! हमारे उस पड़ौसी का पुत्र मर गया।'

'अभी जन्मा और अभी मर गया ? पुत्र ने कहा।

'बेटा ! मरना-जीना किसी के वश की बात नहीं। वह जन्मा तब गीत गाए गए थे। वह मर गया, अब रो रहे हैं, विलाप कर रहे हैं।

'तो मां ! क्या तुम भी मरोगी ?

'हां बेटा ! मरना सबको पड़ता है। मैं भी एक दिन मरूंगी।'

'क्या मुझे भी मरना पड़ेगा ?

'बेटा, ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए।'

'मां ! क्या आपत्ति है मुझे बताने में। क्या मुझे भी मरना पड़ेगा?

'हां, एक दिन तुमको भी मरना होगा। इस संसार में कोई भी प्राणी अमर नहीं होता।'

'क्या मृत्यु से बचने का कोई उपाय भी है, मां !

'हां बेटा ! इसका उपाय है। जो व्यक्ति साधना के द्वारा अपने कर्मों को नष्ट कर देता है, वह मौत से बच जाता है। फिर वह न जन्मता है और न मरता है। वह अमर हो जाता है।'

'मां ! साधना के लिए क्या करना होता है ?

'बेटा ! मुनि-जीवन साधना करने का उचित अवसर देता है। मुनि-जीवन में ध्यान की उत्कृष्ट साधना करने वाला शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।'

थावच्चापुत्र का मन वैराग्य से भर गया, जन्म-मरण के बन्धन से

छूटने की उसकी भावना तीव्र हो गई। वैराग्य बढ़ता गया।

मां पुत्र के बढ़ते वैराग्य से प्रसन्न हुई। पुत्र यदि मुक्ति की ओर बढ़ता है तो इससे बढ़कर माता को और क्या प्रसन्नता हो सकती है?

एक दिन बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि शहर में पधारे। बालक थावच्चापुत्र भगवान् के दर्शन करने गया। भगवान् की अमृतमयी वाणी का उस पर जादू का-सा असर हुआ। उसका वैराग्य तीव्र हो उठा। वह भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण कर हमेशा के लिए मृत्युञ्जयी बन गया।

प्रश्न :

१. थावच्चापुत्र ने छत पर बैठकर क्या सुना ?

२. थावच्चापुत्र के वैराग्य का क्या कारण था ?

३. माता ने थावच्चापुत्र को मृत्यु से बचने का क्या उपाय बताया ?

२४

अर्हन्नक की आस्था

अर्हन्नक एक धर्मनिष्ठ श्रावक था। उसने धर्म का आशय समझा था, अतः उसके लिए धर्म ही सब कुछ था। एक बार वह व्यापार के लिए जलपोत द्वारा समुद्र-यात्रा कर रहा था। जब उसका पोत समुद्र के मध्य पहुंच गया, तब उसके सामने एक देव उपस्थित हुआ। उसका रूप बहुत उद्धत और विकराल लग रहा था। उसने अर्हन्नक से कहा - 'तुम धर्म को छोड़ दो। अगर नहीं छोड़ोगे तो मैं तुम्हारे पोत को समुद्र में डुबो दूंगा।' अर्हन्नक इस अकल्पित घटना से आश्चर्य में डूब गया, किन्तु उसके मन में कोई प्रकम्पन पैदा नहीं हुआ। वह जीवन और मृत्यु के रहस्य को समझ चुका था। इसलिए जीवन का मोह और मृत्यु का भय इन दोनों को पार कर चुका था। उसने बहुत ही धीर-गंभीर स्वर से कहा - 'देव ! मैं धर्म को नहीं छोड़ सकता। उसे क्यों छोड़ूं ? वह छोड़ने की वस्तु है ही नहीं। मैं धर्म से अभिन्न हूं, फिर मैं उसे छोड़ भी कैसे सकता हूं ?

देव ने क्रुद्ध स्वर में कहा - मैं इन सब बातों को नहीं जानता। मैं तो एक ही बात कहता हूं कि तुम धर्म को छोड़ दो। अगर नहीं छोड़ोगे तो इस पोत को समुद्र में डुबो दूंगा। देवता की क्रूर चेतावनी से पोत के सारे यात्री कांपने लगे। वे करुण स्वर में बोले - 'हम सब धर्म को छोड़ देंगे। तुम हमें शरण दो और पोत को मत डुबाओ।'

उन्होंने अर्हन्नक से कहा - 'तुम इतनी जिद्द क्यों करते हो ? एक बार कह दो कि मैंने धर्म छोड़ दिया। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है ? हम सबके प्राण बच जाएंगे और तुम अपनी जिद्द पर अड़े रहोगे तो पोत के सारे यात्री मारे जाएंगे।

अर्हन्नक बड़ी मुसीबत में फंस गया। वह अपने साथियों को समझाने लगा - 'धर्म को मैं कैसे छोड़ दूं ? मैंने धर्म को समझा है, धर्म ही एक मात्र शरण है। फिर मैं दूसरे की शरण कैसे स्वीकार करूं ? मुझे इस बात का दुःख है कि मेरे कारण आप सब मुसीबत में फंस रहे हैं। मैं चाहता भी हूं कि मेरे विचार का परिणाम मैं ही भुगतूं, आप लोगों को नहीं भुगतना पड़े। पर धर्म को छोड़कर मैं किसी दूसरे की शरण में नहीं जा सकता। '

अर्हन्नक की इस दृढ़ प्रतिज्ञा ने देव को विचलित कर दिया। वह अधीर हो उठा। उसने अर्हन्नक का पोत आकाश में उठा लिया और बोला - 'अर्हन्नक ! अब भी तुम मेरी बात मान लो, नहीं तो सब मारे जाओगे।' अर्हन्नक मौत के मुंह में जाकर भी विचलित नहीं हुआ। देव ने देखा और उसके अंतःकरण में प्रविष्ट होकर देखा कि अर्हन्नक अब भी वैसे ही अभय और धर्मनिष्ठ है। देव का हृदय बदल गया। जलपोत समुद्र के तल पर जाकर टिक गया और देव अर्हन्नक के चरणों में लुट गया। सब लोग इस दृश्य को आश्चर्यपूर्ण आंखों से देखते रहे।

जो व्यक्ति धर्म में दृढ़ रहता है उसे कोई भी शक्ति विचलित नहीं कर सकती, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में दृढ़ रहना चाहिए।

प्रश्न :

१. देवता ने अर्हन्नक को धर्म छोड़ने के लिए क्यों कहा ?

२. यात्रियों ने अर्हन्नक से क्या कहा ?

३. अर्हन्नक के दृढ़ रहने पर देवता ने क्या किया ?

२५

मधुर वाणी

किसी कवि ने कहा है -

कागा किसका लेत है, कोयल किसको देत।
बोली के ही कारणे, जग अपनो करि लेत ॥

न तो कौआ किसी का कुछ लेता है और न कोयल किसी को कुछ देती है। पर कोयल की बोली सुनकर मन में प्रसन्नता होती है और कौए की बोली सुनकर अप्रसन्नता। ऐसा क्यों होता है ? स्पष्ट है कि कोयल की वाणी मधुरी होती है, अतः सबको प्यारी लगती है। कौए की कर्कश आवाज को कोई नहीं सुनना चाहता। इसी प्रकार जो बालक मधुर बोलता है, सब उससे बात करना चाहते हैं। सचमुच मधुर वाणी सभ्य-व्यक्ति का लक्षण है। जो समाज असंस्कारी होता है उसके सदस्य ही कटु और अप्रिय वाणी बोलते हैं। एक संस्कृत कवि ने कहा है -

प्रियवाक्यप्रदानेन, सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं, वचने का दरिद्रता॥

मधुर वचन से ही सब लोग प्रसन्न होते हैं, अतः हर एक को मधुर वाणी बोलनी चाहिए। भला, वचन में कंजूसी क्यों करनी चाहिए ?

शास्त्रों में कहा है - अन्धे को भी अन्धा नहीं कहना चाहिए। इससे उसको दुःख होता है और बोलने वाले की भी पहचान हो जाती

है। एक बार एक दुष्ट व्यक्ति, जो अपनी दुष्टता के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध था, कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे एक अन्धा आदमी मिल गया। उसने उससे कहा - 'अन्धे बाबा ! राम-राम।' अंधे ने तत्काल कहा - 'दुर्जन भाई ! राम-राम।' अब तो दुष्ट व्यक्ति को बड़ा ही विस्मय हुआ। उसने अंधे से पूछा - 'क्यों भाई ! तुम तो अन्धे हो। तुम्हें क्या पता, सामने वाला दुष्ट है या सज्जन ?' उसने कहा - 'यह तो बोली से ही पता लग जाता है। पुरुष की परीक्षा तो उसकी बोली ही है। वह ज्योंही बोलता है कि उसकी अन्तरात्मा का परिचय मिल जाता है।'

बहुत सारे बालक हंसी-मजाक में ऐसे भी वचन बोल देते हैं जिनसे दूसरों का दिल दुःखे। उन्हें दूसरों का दिल दुःखाने में ही आनंद आता है , पर उन्हें याद रखना चाहिए कि यदि वे किसी का दिल दुःखा सकते हैं, तो दूसरा भी उनका दिल दुःखा सकता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में प्रिय वचन को सत्यवचन के बराबर माना गया है और कहा है कि **'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्'** - सत्य बोलो और प्रिय बोलो, ऐसा सत्य भी मत बोलो जो अप्रिय हो। हर वचन का हमारे मन में संस्कार बैठता है। यदि हम प्रिय बोलेंगे तो हमारे मन में सुसंस्कार बैठेंगे और यदि हम अप्रिय बोलेंगे तो हमारे मन में कुसंस्कार बैठेंगे। इसे एक उदाहरण के द्वारा यों समझा जा सकता है -

एक बार एक चूड़ी बेचने वाला अपनी चूड़ियां एक गधी पर लादकर उन्हें बेचने के लिए गांव की ओर जा रहा था। रास्ते में वह बोलता जा रहा था - चल मेरी मां, तेज चल। चल मेरी बहिन, तेज चल, आदि-आदि। बीच में उसे एक दूसरा व्यक्ति मिला ! उसने पूछा - तुम गधी को मां-बहिन कहकर क्यों बोल रहे हो ? उसने उसी क्षण उत्तर दिया - मेरा धन्धा ही ऐसा है कि मुझे दिन भर औरतों के साथ रहना पड़ता है। यदि मैं अपनी जबान पर जरा भी अपशब्द ले आऊं तो मेरा धन्धा ही चौपट हो जाए, अतः अपनी जबान की शुद्धि

के लिए इस गधी को भी मां-बहिन कहकर संबोधित करता हूं। इससे मेरी वाणी तो पवित्र रहती ही है, मेरा मन भी पवित्र रहता है।

कुछ लोग अपने नौकरों को गालियां देते रहते हैं। वे समझते हैं, जैसे नौकर तो गालियां खाने के लिए ही होते हैं। ऐसे परिवारों के छोटे-छोटे बच्चे भी गालियां देना सीख जाते हैं। उनकी आदत ही ऐसी पड़ जाती है कि अनायास उनके मुंह से वे ही शब्द निकल जाते हैं। कुछ लोग तो आदत से इतने मजबूर हो जाते हैं कि उन्हें यह भी पता नहीं रहता कि वे अपने आपको गाली दे रहे हैं। इसीलिए तो कहा गया है कि हर शब्द लौटकर हमारे ही पास आता है।

एक बार भगवान् बुद्ध के पास भारद्वाज नाम का एक व्यक्ति आया। भगवान् बुद्ध उस समय प्रवचन कर रहे थे। भारद्वाज उनसे रुष्ट हो रहा था, अतः आते ही वह उन्हें गालियां देने लगा। भगवान् कुछ भी नहीं बोले। भगवान् उसकी गालियां सुनते रहे और मुस्कुराते रहे। चूंकि ताली एक हाथ से तो बजती नहीं, अतः यदि एक व्यक्ति गाली दे और दूसरा न दे तो अपने आप ही शान्ति हो जाती है। आग तो वहीं लगती है जहां जलने जैसी कोई चीज हो। जहां जलने जैसी कोई चीज न हो, वहां कोई आग लगाये भी तो कैसे ? इस प्रकार जब बुद्ध ने कुछ नहीं कहा तो भारद्वाज थोड़ा-सा हतप्रभ हो गया। वह अपने आपको लज्जित अनुभव करने लगा और फिर जब उसने बुद्ध के मुखमण्डल पर मुस्कुराहट की रेखाओं को पढ़ा, तब तो उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

उसे हर प्रकार से हतप्रभ देखकर बुद्ध बोले - क्यों भारद्वाज ! यदि कोई किसी को चीज उपहार में दे और लेने वाला उसको नहीं ले तो वह वापस किसके पास जाती है ? उनकी यह स्नेह-पूर्ण वाणी सुनकर भारद्वाज के हाथ अपने आप जुड़ गये और कहने लगा - भगवन्! वह देने वाले के पास ही रह जाती है। फिर बुद्ध बोले, ''तुमने

हमें इतनी गालियां दीं, पर हमने उनको स्वीकार नहीं किया। तब बोलो, वे वापस कहां जायेंगी ? अब तो भारद्वाज बड़ा लज्जित हुआ। उसे अपनी गलती स्पष्ट महसूस होने लगी।

यदि कोई अप्रिय वचन कहे तो महान आदमी उसे वापस कटु वचन नहीं कहता, क्योंकि वह जानता है कि गाली वही व्यक्ति देता है जिसके पास गालियों का खजाना भरा हुआ है। जिसके पास गाली है ही नहीं, वह गाली कैसे देगा ? अतः अपने आपको महान बनाने के लिए हमें सदा अप्रिय वचन से बचना चाहिए।

प्रश्न :

१. कोयल प्यारी क्यों लगती है ?

२. वाणी का प्रयोग कैसे करना चाहिए ?

३. भारद्वाज की कथा का सार बताओ।

२६

सरलता का परिणाम

बच्चा हर व्यक्ति को प्रिय लगता है। इसका कारण यदि हम खोजें तो पता लगेगा कि बच्चे में सरलता होती है। इसीलिए वह सबको प्रिय लगता है। कुछ लोग बहुत बुद्धिमान होते हैं, पर साथ ही साथ उनमें सरलता नहीं होती, अतः वे प्रिय नहीं लगते। कुछ लोग बुद्धिमान नहीं होते पर सरल होते हैं, इसीलिए उनके प्रति प्रेम हो जाता है।

कभी-कभी सरलता से कही गई बात का इतना प्रभाव होता है कि बड़ी बुराई भी उखड़ जाती है। एक बार की बात है, अरब देश का एक ग्रामीण लड़का एक कबीले के साथ पढ़ने के लिए शहर जा रहा था। बच्चे का पिता मर चुका था, अतः प्रस्थान करते समय उसकी मां ने उसकी व्यवस्था के लिए मोहरें उसके कपड़ों में सी दीं और कहा - ''शहर जाकर तुम खूब मन लगाकर पढ़ना, कभी झूठ मत बोलना। जब भी आवश्यकता हो तो मोहरों को बेचकर अपना काम चला लेना।

बच्चा मां की सीख लेकर चल पड़ा। रास्ते में डाकुओं ने कबीले को घेर लिया तथा उनके पास जो कुछ था उसे लूट लिया। पर उन्हें बच्चे के कपड़ों में सिली हुई मोहरों का पता नहीं लगा, अतः वे बच्चे के पास ही रह गईं। सब कुछ छीन लेने के बाद अन्त में डाकुओं ने कहा - 'किसी के पास अगर कुछ और धन हो तो यहां रख दे।' बच्चा झट से आगे आया और अपने कपड़ों में सी-हुई मोहरें डाकुओं को दिखाते हुए

बोला - 'मेरे पास ये हैं।'

डाकू बालक की सरलता से मुग्ध हो गये। वे सोचने लगे - यदि यह बच्चा हमें नहीं कहता तो हमें पता भी न चलता कि इसके पास मोहरें हैं। पर इसने हमें स्वयं ही बता दिया, अतः उन्होंने उससे पूछा - 'तुमने हमें ये मोहरें क्यों बताई ?' बालक ने उसी सरलता से कहा - 'जब मैं अपने घर से रवाना हुआ तो मां ने कहा था - 'कभी झूठ मत बोलना, अतः मैंने आपके सामने सारी बात सच-सच बता दी।' डाकू बालक की सरलता को देखकर स्तम्भित रह गए। उन्होंने सोचा - कहां हम हैं जो दिनभर डाका डालते हैं और कहां यह छोटा बालक है जो अपनी मां की सीख मानकर झूठ भी नहीं बोलता। उनका हृदय परिवर्तन हो गया। उन्होंने सारे कबीले का धन-माल तत्काल वापस कर दिया तथा आगे से डाका डालना छोड़ दिया।

यह एक छोटी-सी घटना है। पर यदि हम इसके परिणाम को देखें तो पता लगेगा कि सरलता से कही हुई बात भी कितना बड़ा प्रभाव डाल सकती है।

स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों की बात है। एक भारतीय व्यक्ति अंग्रेजों का जासूस बनकर सदा गांधीजी के पास उनके आश्रम में आया करता तथा उसकी दिन भर की खबरों को अंग्रेजों तक पहुंचाया करता था। गांधीजी को किसी तरह इस बात का पता चल गया, अतः वे उससे बोले - 'तुम इतना कष्ट क्यों करते हो ? मैं ही अपनी सारी चर्या तुम्हें बता दिया करूंगा।' उस व्यक्ति पर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा। दूसरे दिन जब वह नियत समय पर आया तो गांधीजी ने अपनी दैनिक डायरी उसके आगे रख दी। अब प्रतिदिन यह क्रम चलने लगा। अधिकारियों को जब इतनी सही-सही रिपोर्ट मिलने लगी तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने जासूस से इसका कारण पूछा। उसने सारी बात साफ-साफ बता दी कि गांधीजी स्वयं मुझे अपनी सारी चर्या बता देते

हैं। यह सुनकर उनको और भी अधिक आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे - 'हम जिसको अपना शत्रु मानते हैं, जिसे हर उपाय से नीचे गिराने की कोशिश करते हैं, वही व्यक्ति हमारे प्रति इतना सरल है। तब हम उसके साथ क्या लड़ाई कर सकेंगे ? उनका सिर गांधीजी के प्रति श्रद्धा से झुक गया।

इससे हम समझ सकते हैं कि सरलता केवल धर्म ही नहीं अपितु वह एक बहुत दूरगामी नीति भी है।

प्रश्न :

१. डाकू बालक से क्यों प्रभावित हुए ?

२. गांधीजी अंग्रेजों के श्रद्धापात्र कैसे बने ?

३. इस पाठ में वर्णित घटनाओं से तुम्हें क्या प्रेरणा मिलती है ?

२७

धन अनर्थ का मूल है

दो भाई विदेश से धन कमाकर वापस आ रहे थे। धन एक नोली में जमा किया हुआ था। रास्ते में एक-एक दिन उस नोली को दोनों भाई रखते थे। एक रोज उन्होंने नदी के किनारे विश्राम किया। रात हो गई, वहीं पर दोनों सो गये। बड़े भाई के दिल में अकस्मात् एक विचार आया - आज नोली मेरे पास है। क्या ही अच्छा हो यदि मैं अपने छोटे भाई को नदी में बहा दूं - समूचा धन मुझे मिल जायेगा, अन्यथा घर जाकर धन के दो हिस्से होंगे और मुझे आधा ही मिलेगा। ज्योंही वह भाई को मारने के लिए खड़ा हुआ, उसके विचार बदल गए। वह अपने आपको धिक्कारने लगा - अरे नीच ! तू आज धन का दास बन गया ? धन के लिए भाई को मारने में नहीं हिचकिचाया ! तेरी दृष्टि में भाई तृण के समान तुच्छ है और धन तेरे प्राण है ! क्या इस धन से तेरी तृष्णा बुझ जायेगी ? जो धन तेरे भाई का खून करवाता है, वह तेरे लिए कैसे सुखद होगा ? आखिर उसने यही निर्णय किया कि इस नोली को नदी में बहा दूं, क्योंकि इसी से मैं ऐसा नीच बना। उसने वैसा ही किया।

प्रभात हुआ। छोटा भाई जागा। उसे पता चला कि नोली नदी में

बहा दी गई। उसने बड़े भाई से उसके विषय में पूछा। भाई ने सारी बीती बात कह सुनाई। छोटा भाई बोला - आपने अच्छा किया। मेरे विचार भी आप जैसे ही हो गए थे। इस नोली को आज आप नदी में न बहाते तो आप कल जीवित नहीं रह पाते।

वे दोनों अपने घर पहुंचे। परिवार के लोगों से मिले। उनकी बहिन ने भाईयों की आवभगत करने के लिए एक मछली मंगाई। उसका पेट चीरा। उसी समय उसके पेट से रुपयों की नोली थाली में आ गिरी। उसने नोली छिपा ली। पास में उसकी बूढ़ी मां खाट पर सोई हुई थी। उसके कानों में नोली की झणकार पड़ी। मां ने कहा - ''पुत्री ! यह नोली कहां से गिरी ?'' बेटी ने कहा - 'नहीं मां ! नोली कहाँ ? यों ही भ्रम हुआ होगा।

'बेटी ! तुम झूठ बोलती हो। अभी इस मछली के पेट से निकली थी न ? तुमने उसे कहीं छिपा लिया है।' मां ने कहा और वह उसे छीनने के लिए खाट से नीचे उतरी। बेटी लाल-पीली होकर मां की ओर लपकी। वह पिशाचिनी-सी विकराल दिखने लगी। उस निर्दया ने मूसल से मां की कपालक्रिया कर दी। बुढ़िया के मुंह से आह के सिवाय और कुछ भी नहीं निकला। चारों ओर कोलाहल मच गया। लोग इधर-उधर दौड़ने लगे। घबराकर बहिन भी भागी। भाइयों ने पीछाकर उसका हाथ पकड़ा। उसकी बगल में नोली को देखकर बोले - हा ! यह वही नोली है जो हमने नदी में डाल दी थी। यह धन ही अनर्थ का मूल है। नोली ! तुम्हें नमस्कार है। हे राक्षसी ! भाई का भख न ले सकी, किन्तु अन्त में मां का भख लेकर ही तू संतुष्ट हुई।

फिर वे बहिन से बोले - 'बहिन ! ले जाओ इसे। मां को

मारकर तुम अमर रहोगी, यह तुम्हारी नोली अमर रहेगी। बहिन ! थोड़े से धन के लिए क्या यह सब करना उचित था? बहिन ! तुम्हारा दोष नहीं। यह सब धन की ही विडम्बना है।

प्रश्न :

१. बड़े भाई ने नोली को नदी में क्यों बहाया ?

२. बेटी ने मां की हत्या क्यों की ?

३. धन को अनर्थ का मूल क्यों कहा गया है ?

४. मां की हत्या कर भागती हुई बहिन से भाईयों ने क्या कहा ?